मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 18	मंगलवार, 10 मार्च 1992	संख्या 11

भक्ति

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

भक्ति चाहे जिस श्रेणी की हो, परन्तु भक्त को उससे जो वस्तु मिल जाती है, उसके लिए बड़े-२ ज्ञानी, ध्यानी, योगी, तपस्वी तरसते ही रह जाते हैं और उनके हाथ यह नहीं आती। वह वस्तु क्या है ? वह वस्तु गुरु का ही सहारा है। जो लोग यह डींग मारते हैं कि वे तो सर्वव्यापक का ही ध्यान करते हैं, वे झूठ बोलते हैं। जो व्यक्ति यह कहते हैं कि हम तो केवल परमेश्वर या ईश्वर का ही ध्यान करते हैं और किसीका नहीं, वे भी झूठ बोलते हैं, क्योंकि ऐसे लोगों ने न तो कभी ईश्वर का दर्शन किया है और न ही ईश्वर का रूप उनके अन्दर प्रकट हुआ है। फिर वह ध्यान किसका करते हैं और कैसे करेंगे ?

दूसरी बात यह है कि कुदरती अपने से भिन्न वर्ण, जाति या पदार्थ का प्रेम कभी पैदा नहीं होता। प्रेम जब होगा अपने जैसे (हमजिन्स) से होगा। ईश्वर अपने से भिन्न वर्ण (जिन्स) है। उससे हमारा प्रेम कैसे हो सकता है ? हाँ, जब वह हमारे ही रूप में, अर्थात् मनुष्य के चोले में आता है तो उसके प्रति प्रेम हमारे दिल में उमड़ता है, तभी तो उसका ध्यान करना सम्भव होता है। दूसरे ढंगों से असम्भव है।

इसी प्रकार, बहुत से लोग देवी तथा देवताओं के ध्यान की डींग मारते हैं। यद्यपि उनकी कल्पना के अनुसार उनको इसका कुछ फल सिद्धिशक्ति या किसी और रूप में कुछ समय के लिए मिल भी जाय परन्तु भिन्न वर्ण (गैर-जिन्स) होने से उनका पूर्णतया उद्धार नहीं होगा। आखिर हो भी कैसे सकता है, क्योंकि देवी-देवता भी रचना में सीमित स्थिति में हैं। वे अपनी सीमा से बाहर नहीं जा सकते। मनुष्य सीमा तथा असीमा, दोनों से पार जा सकता है। इस दृष्टि से वह देवताओं से भी बड़ा है।

मैंने आपको अभी-२ बताया था कि प्रकृति का यह नियम है कि कोई भी जीव अपने से भिन्न जाति या वर्ण से प्रेम नहीं कर सकता। यदि देवी-देवता मनुष्य से भिन्न जाति के हैं तो यह नियम उन पर भी लागू होना चाहिए। लेकिन मैं यहाँ जिन्हें देवी-देवता कह रहा हूँ, वे आपके दुनिया के कल्पित देवी-देवताओं से भिन्न हैं। देवी-देवता वास्तव में, कुदरत की चमकती हुई और दिव्य शक्तियों के नाम हैं जैसे कि सूर्य, चन्द्रमा आदि। यह देवी-देवता ब्रह्माण्ड में विराट् पुरुष के शरीर में गुथे हुए हैं। स्थूल रूप से गुदाचक्र, निष्कासन शक्ति जो गणेश कहलाती है। इन्द्रियचक्र की शक्ति ब्रह्मा कहलाती है। नाभिचक्र की गर्मी का नाम विष्णु है। हृदयचक्र (नब्ज़) शक्ति को शिव का नाम दिया गया है। कण्ठचक्र की आकाशी शक्ति आज्ञा देवी कहलाती है। तीसरे तिल या शिवनेत्र की शक्ति का नाम सूर्य है। आदि-२।

जैसे यह ब्रह्माण्ड में है वैसे ही यह पिण्ड में भी मौजूद है। "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे"। इन शक्तियों पर विशेष-२ युक्तियों या उपायों से विजय प्राप्त की जा सकती है। जो इन उपायों को प्रयोग में लाता है, इन शक्तियों को बढ़ा भी

लेता है। लेकिन फिर भी ये शक्तियाँ सीमित ही रहती हैं। अपनी सीमा से आगे नहीं बढ़ सकतीं। पृथ्वी सीमित है, इसलिए इसका देवता गणेश भी सीमित ही है। पानी सीमित है, इसलिये इसका देवता ब्रह्मा भी सीमित है। अग्नि भी सीमित है, इसलिये इसका देवता विष्णु भी सीमित है। वायु सीमित है, इसलिये इसका देवता शिव भी सीमित है। आकाश अपने मण्डल में सीमित है, इसलिये इसकी शक्ति आज्ञादेवी भी सीमित है। सूर्य अपने सूर्यमण्डल में सीमित है, इसलिये इसकी शक्ति इसी तक ही सीमित है। आदि-२। आँख की शक्ति, दृष्टि-साधन से चाहे लाखगुनी बढ़ जाय, लेकिन फिर भी एक सीमित दूरी की सीमा से अधिक नहीं बढ़ सकती। इसी तरह सभी देवताओं की सीमितता को भी समझ लो। लेकिन मनुष्य की क्या दशा है :—

बावजूदे कि पर व बाल न थे आदम के।
पहुँचा उस जा कि फ़रिश्तों का भी मकदूर न था॥

कहने वाले कहते चले आ रहे हैं कि नर-शरीर देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, लेकिन लोगों ने इस बात को ठीक तरह से समझा ही नहीं। वह अज्ञान के कारण देवताओं के दास बने रहे उनके आधीन रहे। जो स्वयं बन्धन में है, वह दूसरों को क्या मुक्ति दिलायेगा। अज्ञानता के कारण मनुष्य अपनी महानता को जानता ही नहीं।

अतः राधास्वामी मत या सन्तमत में इन देवी-देवताओं को इष्ट नहीं माना गया क्योंकि ये काल के चक्र से बन्धे हुए हैं। सन्त हमेशा मनुष्य के रूप में आते हैं। ये पूर्णपुरुष होते हैं। मानव पूर्णता को ही समझने के लिए है। पूर्णपुरुष ही का नाम सत्पुरुष है।

मैंने अभी आपको बताया था कि भक्ति दुर्लभ वस्तु

है और जिनको यह दुर्लभ वस्तु प्राप्त होती है वे धन्य हैं। परन्तु इतनी दुर्लभ वस्तु भक्तों को प्राप्त कैसे होती है? वह गुरुकृपा तथा गुरु के सहारे के कारण ही मिलती है। यह सहारा भक्तों को अपने घट से ही मिलता है क्योंकि विचार सदा अन्दर से ही आता है।

जिनको अभ्यास करने से मुक्ति की अवस्था प्राप्त हो गई है वह अध्यात्म के किसी स्थान पर पहुँच गये हैं, वे इस बात को अच्छी तरह से समझते हैं कि गुरु का सहारा क्या है। जिनको अभी तक गुरु नहीं मिला, वह इस रहस्य को समझ नहीं पायेंगे।

गुरु के सहारे रहने वालों पर जिस समय कोई आपत्ति आती है, वे अपने घट में चले जाने हैं। रात-दिन इस क्रिया को करते रहने से वे संसार के सुख और दुःख दोनों से बचे रहते हैं और गुरु के सहारे से लाभ उठाते हैं।

सहारा और सहारे की वस्तु मनुष्य के अपने अन्दर होती है, इसे बाहर कहीं ढूंढने की आवश्यकता नहीं। भक्त के प्रत्येक व्यवहार में गुरु ही बराबर भासता रहता है। भक्त सदा अपने भगवन्त से लाभ उठाता रहता है।

गुरु मिला तो बाहर से ही था। परन्तु अन्तर के पट खुल जाने से वह घट में समा गया। अब धीरे-२ अभ्यास करने से भक्त की सभी कमियाँ दूर हो जायेंगी।

अब यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि यदि किसी व्यक्ति ने गुरु से विशेष शिक्षा पाई है किन्तु किसी कारण से वह गुरु से अलग हो गया है, उससे बहुत ही दूर चला गया है, आवश्यकता पड़ने पर वह गुरु का सहारा लेकर किस तरह अपना काम निकाले। गुरु तो बनारस में है और चेला या भक्त बहुत दूर समुद्र के किनारे पर बसता है। न तो वह गुरु से कोई बातचीत कर सकता है और न ही उसे

अपनी कठिनाई के विषय में बता सकता है। वह करे तो क्या करे—किसको अपना कष्ट बताये ? इस प्रश्न का उत्तर सन्तों ने स्पष्ट शब्दों में दिया है :—

लाख कोस जो गुरु बसे, दीजे सूरत पठाय।
शब्द तुरी असवार होय, छिन आवे छिन जाय॥
जो गुरु बसे बनारसी, शिष्य समुन्दर तीर।
एक पलक बिसरे नहीं, जो गुन होय शरीर॥

उत्तर मिल गया न आपको! अब इस विषय पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। सहारा—सहारा है वह कहीं नहीं छूटता, कहीं नहीं जाता। वह तो स्वयं उसके अन्दर मौजूद है। चाहे तो भक्त अपने घट में जाकर गुरु के दर्शन करके उसका सहारा ले या बाहर विचार-धारा द्वारा उसका लाभ उठाये।

अध्यात्म की बातें केवल कहने-सुनने की नहीं, अनुभव करने की हैं। यह वाचक ज्ञान नहीं है, कमाया हुआ ज्ञान है। कर्त्ता उस्ताद न कर्त्ता शागिर्द। जिस व्यक्ति को इन बातों का निजी अनुभव या ज्ञान नहीं, वह यदि इस सच्चाई से इन्कार करे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भक्त को तो कभी इस सच्चाई से इन्कार हो ही नहीं सकता क्योंकि भक्त चाहे भला हो जा बुरा वह इस बात से कभी वंचित नहीं रहता।

अतः जो तर्क-वितर्क करते हैं और बाल की खाल निकालते रहते हैं, वे फ़िलासफ़ी की सूखी हड्डियाँ चबाया करें। उन्हें भक्ति के रस का स्वाद कहाँ से आयेगा ? कहा गया है :—

यह करनी का भेद है, नाहिं बुद्धि विचार।
बुद्धि छोड़ करनी करो, तब पाओ कुछ सार॥

जिसे गुरु नहीं मिला, जो गुरुमत नहीं है, वह गुरु की महिमा को क्या समझेगा ? जिसे गुरु का सहारा प्राप्त नहीं है और उसने सहारे का परिचय तक भी नहीं पाया, वह इस सहारे के महत्त्व को क्या जानेगा ?

पीउ परिचय तब जानिये, पिंड सों हिल मिल होय।
पीउ की लाली मुख पड़े, परगट दीखे सोय ॥
लाली अपने लाल की, जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल ॥

सहारा लिया और उस सहारे की कदर की। कछुए की तरह शम दम करते हुए अथवा मन और इन्द्रियों को समेटते हुए, उसे अन्तर में, गुरु के पवित्र चरणों में डाल दिया। यह अभ्यास है। इस अभ्यास से जब गुरु का रंग चढ़ जाता है तब चेले के व्यवहार में भी वही रंग प्रकट होने लगता है। जैसे कि गिरगिट रंग बदल लेती है वैसे ही शिष्य रंग बदल कर गुरुमुख हो जाता है। भक्त गुरुभक्त होकर परमार्थ कमाता है। जिस तरह जाग्रत अवस्था तथा स्वप्न की अवस्था साथ-२ चलती हैं, उसी प्रकार ही संसारी जीवन में कर्म, विचार और परमार्थ साथ-२ चलते हैं। परन्तु भक्तों या चेलों को गुरु का गहरा रंग चढ़ता रहता है, जो न तो कभी उतरता है और न ही फीका पड़ता है। यदि रंग ग्रहण कर लिया जाय, तभी ही तो बात बनती है :—

जाको गुरु ने रंग दिया, कभी न होय कुरंग।
दिन-२ बानी उज्जली, बढ़े सवाया रंग ॥
जाको गुरु ने रंग दिया, कभी न होय कुरंग।
कोटि काल झकझोलये, तोऊ न होय चित भंग ॥

जिस भक्त ने गुरु का गहरा रंग ले लिया है, या यूं कहिये कि जो भक्त गुरु के गहरे रंग में रंग गया है, वह

दु:ख-सुख, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, आदि द्वन्द्व की दशाओं में एक समान रहेगा। यदि रंग नहीं चढ़ा और वह भेड़िये की चाल चला या किसी की देखादेखी वैसा काम किया, तब तो न उसके भक्त का ठिकाना है और न उसके भगवन्त का। ऐसा नाम का भक्त यदि मुसीबत के समय गुरु को छोड़ भी दे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा, क्योंकि वह इतने समय गुरु के सहारे रहता हुआ भी सच्चे अर्थों में गुरुभक्त नहीं है :—

देखादेखी भक्ति का, कबहुँ न लागे रंग।
विपत्ति परे पर छांड़ही, ज्यों काचनी भुजंग॥

भक्त वह जो सहारा लेकर भक्ति करे और अपना लोक तथा परलोक दोनों बनाये। भक्ति सबसे दुर्लभ वस्तु है।

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट सुतैहरी रोड, होशियारपुर को दिया धन आयकर अधिनियम की धारा 80-जी, के अन्तर्गत, पत्र नं० JUDL/Trust/13999 dt. 31-12-91, साल 1993-94 तक आयकर से मुक्त है।

राम राम तू भले न जप,
परन्तु अपने कर्मों को ठीक रख

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

का

(चोला छोड़ने से पहिले)

मानवता मन्दिर होशियारपुर में दिया गया अन्तिम सत्संग

जुलाई 18, 1981

मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ ऐ फकीर चन्द ! तुमने यह क्या पाखण्ड का जाल बना लिया ? ज़िन्दगी किसी तलाश में गुज़री। बचपन में सोचा करता था 'राम को मिलूंगा', 'कृष्ण को मिलूंगा'। वे मुझे दर्शन देंगे। अब ज़िन्दगी ने पल्टा खाया। मैं आपको कहना क्या चाहता हूँ, ध्यान से सुनो ! मुझे न कोई राम मिला, न कोई कृष्ण मिला और न ही कोई गुरु मिला। अपना ही मन था, जो कभी गुरु बनता था तो कभी चेला। वही मन राम बनता था और वही कृष्ण। परन्तु हर आदमी इस रहस्य को समझ नहीं सकता, जब तक कि वह स्वयं उस रास्ते पर दौड़े नहीं। जो कुछ मैं कह रहा हूँ, वही कबीर ने कहा, वही स्वामी जी ने कहा। जिसको हासिल करने के लिए मैंने अपने जीवन में बहुत कुछ किया और चाहा कि यह मिल जाय, वह मिल जाय। क्या वह मुझे मिला ! आख़िर मैं पहुँचा कहाँ ? मैं पहुँचा वहाँ, जहाँ न राम है, न कृष्ण है,

न करीम है, न मैं है, न तू है। यह सब अहंकार है। मगर वहाँ जाना कौन चाहता है ?

यह सन्तों का मार्ग है, आम दुनिया वालों के लिए नहीं है। यह सौ फीसदी सच्ची बात है। स्वामी जी ने भी वहाँ पहुँचने की कोशिश की। वह पहुँचे कहाँ ? पहुँचे वहाँ जहाँ नाम नहीं, सतनाम नहीं अनामी नहीं।

नहिं ख़ालिक मख़लूक न खिलकत।
कर्त्ता कारण काज न दिक्कत ॥
राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहीं, कुछ नहीं कुछ नहीं था सो ॥

कबीर साहिब ने भी यही कहा :—

"जहाँ पुरुष तहवाँ कछु नाहिं, कहें कबीर हम जाना"

मैंने भी बहुत कोशिशें कीं, बहुत तमाशे देखे। परन्तु जब मैंने लोगों से सुना कि उनको मेरा रूप प्रकट होता है जबकि मैं वहाँ नहीं होता, तो मेरी ज़िन्दगी ही बदल गई। मैं मन के दायरे को छोड़कर ऊपर जाने को मजबूर हो गया, जहाँ प्रकाश और शब्द है। उससे आगे जाने पर क्या रह जाता है ? कुछ भी नहीं, न मैं, न तू, तो ज़िन्दगी क्या है ?

'कुछ नहीं, कुछ नहीं कुछ नहीं था सो,
यह है मंज़िले मकसूद।'

आप दुनियादार हैं, इसलिये आप लोगों को मैं कुछ कहना चाहता हूँ। आपको पन्थ में आने की ज़रूरत नहीं है। आप तो दुनिया चाहते हैं, खुशी और आनन्द चाहते हैं। चाहते हैं कि नहीं ? ठीक है, उन्हें हासिल करो। उन्हें हासिल करने के लिए क्या करो ? अपना कोई इष्ट बना लो। कोई भी इष्ट, जहाँ तुम्हारी मर्ज़ी हो। अपने आपको उस इष्ट के सुपुर्द कर दो। आप जितना ही अपने इष्ट से अन्दर से प्रेम करोगे, उतना ही तुमको फायदा होगा। आपको कहीं किसी

फकीर चन्द या गुरु के पास जाने या धक्के खाने की ज़रूरत नहीं। सच्चा सद्गुरु वही है, जो दुःखी जीवों को बाहर के धक्कों से छुड़ा कर अन्तर्मुखी कर दे। सन्तों के मार्ग में पूर्ण सद्गुरु की महिमा क्या है :—

'घट में घर दिखला दे, सो सद्गुरु पुरुष सुजान'

जो जीवों को अपने अन्तर में ही सब कुछ होने का विश्वास दिला दे उसको बाहरी गुरु कहते हैं। मैंने गुरु का काम बड़े दर्देदिल से किया है। परन्तु आजकल हो क्या रहा है? ऐ मेरे भाई और बहनो! अगर आप मुझसे सच्चाई पूछते हो, तो वह यह है कि जितना आजकल गुरुडम फैला हुआ है यह सब धोखा है, फ़रेब है। इस फ़रेब को देख-२ कर मेरी तो आँख ही खुल गई।

मेरे भाई! जो भी कुछ किसीको इस जन्म में प्राप्त होता है वह उसके अपने ही विश्वास, अपने ही प्रेम तथा अपनी ही श्रद्धा के कारण ही होता है। परन्तु हम धोखे में रहकर यह समझते हैं कि जो कुछ हमें मिलता है, देवी-देवता हमें देते हैं, राम देता है, कृष्ण देता है, विष्णु देता है। अरे कोई कुछ नहीं देता। मैं आपको हकीकत बताता हूँ। लोग मेरा ध्यान करके, मेरा रूप प्रकट कर लेते हैं और मैं सच कहता हूँ कि मेरे तो बाप को भी इस बात का पता नहीं होता। मुझको तो दाता दयाल ने यह काम सौंपा था, सो कर रहा हूँ। मैं तो उस प्रीतम को मिलना चाहता था। मैं न गुरु हूँ, न महात्मा। सच्ची बात कोई नहीं बताता। गुरु नाम है सच्चे ज्ञान का। वह सच्चा ज्ञान मैं आपको बताना चाहता हूँ। मैं आपकी आँखों में धूल नहीं डालना चाहता और न ही आपको अपने जाल में फँसाना चाहता हूँ, बल्कि सच्चाई बयान करना चाहता हूँ।

मेरे प्यारे भाई-बहनो! सत्य कहता हूँ कि जो भी कुछ

तुम्हें मिल रहा है और मिलेगा, वह तुम्हारे अपने ही कर्मों के कारण होगा। अपने कर्म ठीक करो। इस भ्रम में न रहो कि राम नाम की माला फेरने से या किसी फकीर बाबा को या किसी गुरु को खुश कर लेने से तुम्हारा काम बन जायेगा। नही बनेगा ! नहीं बनेगा !! जब मैं यह देखता हूँ कि बड़े-२ गुरु और महात्मा भी अपने कर्मों के फल से नहीं बच सकते, दुःखों से नहीं बच सकते तो यह साबित हो गया कि सभी अपना-२ कर्म ही भोगते हैं। मैं इस सच्चाई को जानता हूँ, इसलिये मैंने तालीम को बदलने की कोशिश की है। मैं कहता हूँ **ऐ इन्सान राम राम तू भले न जप, अपने कर्मों को ठीक रख। अपने निजी स्वार्थ के लिए किसीके साथ धोखा, फ़रेब, 420 या हेराफेरी न कर।**

दाता ने कहा था कि तालीम को बदल जाना इसलिये मैंने यह काम किया। हो सकता है कि मैंने जो कुछ समझा है, वह ग़लत हो। मैं किसी चोज़ का दावा नहीं करता। कोरी सच्चाई यह है कि हर शख्स को अपने पिछले जन्मों के और इस जन्म के कर्मों के फल को भोगना ही पड़ता है। तुम लाख बार राम को याद करो, खुदा को याद करो, जिसका मर्ज़ी हो सुमिरन करो, लेकिन तुम अपने किये हुए कर्मों के फल से बच नहीं सकते ! बच नहीं सकते !! हरगिज़ नहीं। यह बात और है कि अज्ञानी को दुःख अधिक महसूस होता है। वह दुःख को रो-२ कर भुगतता है और ज्ञानी अपने ज्ञान के कारण दुःखी कम होता है, रोता-चिल्लाता कम है। इतना तो मैं मानता हूँ। परन्तु कर्मों का फल तो हरएक को भुगतना पड़ेगा, भुगतना पड़ेगा, भुगतना पड़ेगा। इसलिये मैंने तालीम को बदल दिया है।

आप स्वयं ही देखो, तुम्हारे घरों में क्या हो रहा है? तुम करते क्या हो? एक-दूसरे से तुम्हारी नफ़रत है, द्वेष है, ईर्ष्या है। बेटे की बाप से नहीं बनती, औरत की खाविन्द से नहीं बनती। भाई की भाई से नहीं बनती। शादियाँ हो जाती हैं और फिर तलाक के लिए दौड़ा जाता है। घरों में नाममात्र की भी शान्ति नहीं, फिर भी यदि तुम उम्मीद करो कि तुमको दुनिया में सुख मिलेगा, शान्ति मिलेगी, यह हरगिज़ नहीं होगा। यह असम्भव है। तुम चाहे जिस खुदा को या भगवान् को याद क्यों न करो, तुमको शान्ति नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी। हरगिज़ नहीं मिलेगी। हाँ शान्ति एक तरीके से मिल सकती है, वह यह कि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ। फिर तुम दुःख से बच जाओगे, ऊपर उठ जाओगे। आपने देखा है न कि जब क्लोरोफार्म से एक मरीज़ को बेहोश कर दिया जाता है, फिर चाहे उसकी टाँग काट दी जाय, चाहे बड़े से बड़ा आपरेशन कर दिया जाय, क्या मरीज़ को इसका पता चलेगा? नहीं चलेगा न! जब एक इन्सान दर्द से चिल्ला रहा हो, आप उसे नींद की गोली दे दो, उसे नींद आ जायेगी। नींद आने पर उसे दर्द महसूस नहीं होगा।

इससे क्या सिद्ध हुआ? सुख है कहाँ? सच्चा सुख है शरीर और मन को भूल जाने में। इसको कहते हैं नाम। तुम लोग जागते हुए राम-२ करते हो, अल्ला-२ करते हो। मुँह से तो बातें करते रहते हो और हाथ में माला फिरती रहती है। अगर कोई शख्स इस दुनिया में रहते हुए भी, कर्मों के फल से बचना चाहता है तो उसके लिए एक ही उपाय है कि वह जिस्म और मन से ऊपर चला जाय।

मैं आपको हकीकत बता रहा हूँ। मुझे इज़्ज़त की ज़रूरत नहीं, पैसे की ज़रूरत नहीं, किसी भी चीज़ की

ज़रूरत नहीं। मैं तो छोटी उम्र से ही यह देखना चाहता था कि मेरा मालिक कहाँ है? मैं कहाँ से आया हूँ? इसी खब्त में ज़िन्दगी गुज़र गई। अब मेरी समझ में आ गया है कि मालिक कहाँ है? मुझे पता चल गया है कि मेरी "मैं" जो है यहीं खत्म हो जाती है, फिर बाकी जो कुछ है राम हो राम है।

"जल में थल में खडक खम्भ में
सब में व्यापक राम।"

सब जगह एक ही हस्ती है। तो अब मैं क्या करता हूँ? अब मैं समाधि में जाकर अपने आपको मालिक के सुपुर्द कर देता हूँ। वहाँ न प्रकाश है, न शब्द है, न कुछ है न कुछ। मेरी खोज का यह नतीजा निकला है।

हो सकता है कि मैंने जो कुछ समझा है, वह ग़लत हो। मैं दावा नहीं करता और न ही मैं किसीको चेला बनाता हूँ। मैं यह भी नहीं चाहता कि कोई मुझे पूजे। मुझे किसीसे कोई गरज नहीं। मेरे प्यारो! मैं तुम्हें बताये देता हूँ कि तुमको जो कुछ भी मिलता है, तुम्हारे अपने ही विश्वास और श्रद्धा के कारण ही मिलता है। यह एक बड़ा भारी रहस्य है। कल ही मैंने अपने सत्संग में कहा था कि Law of Radiation प्राकृतिक किरणों का सिद्धान्त, सदा काम करता है। संगत का प्रभाव ज़रूर पड़ता है। अगर बीस साल पहिले मुझे इस नियम या सिद्धान्त का पता होता तो मैं ईमान से कहता हूँ कि मैं आप लोगों को कभी सत्संग न देता। इसमें सन्देह तनिकमात्र भी नहीं कि इन्सान के अन्दर से जो ख्यालात की धारें निकलती हैं, उनका असर दूसरों पर पड़ता है। जब एक ही घर में रहने वाले व्यक्ति एक जैसे ख्याल नहीं रखते, उनमें आपस में प्रेम नहीं, तो घर में शान्ति कैसे हो सकती है? गन्दे radtation (रेडिएशन) के

कारण घरों में झगड़े होंगे ही, अशान्ति होगी ही, तकलीफें आयेंगी ही। वेद. पुराण तथा उपनिषद् भी यही कहते हैं। सभी एक तरफ मुँह करके चलो, एक कदम होकर चलो, एक राय लेकर चलो, तब घरों में शान्ति अवश्य आयेगी। जब तक घरों में विरोध और मतभेद रहेगा, तब तक शान्ति कहाँ और कसे आयेगी ? इसलिये मैं बार-२ आपको कहता हूँ कि सच्चे बनो। तुममें लाख दोष भी क्यों न हों कुछ परवाह नहीं। अकेले बैठकर अपने अन्दर घुसकर सच्चे दिल से अपने आपको मालिक के सुपुर्द कर दो, शरणागत हो जाओ। बस, ज्यों-२ तुम सच्चे बनते जाओगे, तुम्हारे अन्तर का मैल साफ होता जायेगा। वैसे समूह में बैठकर तुम गा सकते हो, परन्तु इससे तुम्हारे अन्दर का मैल साफ नहीं होगा। अपने घर में एकान्त में बैठकर, मालिक से दुआ किया करो कि वह तुम्हारा मन साफ करें। मैं ऐसा ही करता हूँ। जहाँ तुम सच्चे बने, कुदरत तुम्हारे लिए दरवाज़ा खोल देगी मेरे लिए तो दरवाज़े खुल गये मुझे औरों का पता नहीं।

दूसरे मुझसे माँगते हैं, उनके काम बन जाते हैं, परन्तु मुझे तो इसका ज्ञान नहीं होता। मेरा ध्यान कौन और कब करता है, इसका मुझे पता नहीं होता। मेरा रूप प्रकट होकर लोगों के काम कर जाता है, मेरे तो बाप को भी पता नहीं होता। दोस्तो ! मैं आपको वह राज़ बता रहा हूँ, जिसको पर्दे में रखकर इन गुरुओं ने, महात्माओं ने, इन मज़हब वालों ने, हम भोलेभाले गृहस्थियों को लूटा है। हमको सच्ची बात नहीं बताई। हमारे पसीने की कमाई से, इन बड़े-२ महापुरुषों ने अपने आश्रम और भवन बनाकर, अपने बच्चों को दे दिये। ऐसे महात्माओं ने हमें सच्चाई न बताकर मज़हब के नाम पर, हम गृहस्थियों को लूटा और

गलत तरीके से अपने पीछे लगा लिया। मैं खुद भी लुट गया था। यह और बात है कि मेरे सद्गुरु समर्थ थे। मैं गुरु की सेवा करता था। उनको हज़ारों रुपये भेंट करता था। परन्तु मेरे गुरुदेव साक्षात् परमतत्त्व का अवतार थे। मैंने जितने भी रुपये उन्हें भेंट में दिये उन्होंने उसमें उतने रुपये अपनी तरफ से डाल कर उन रुपयों को डबल करके, मेरी पत्नी को प्रसाद के रूप में दे दिया। क्या किसी दूसरे गुरु ने ऐसा किया? क्या अपने हाथ में आई हुई लक्ष्मी को वापिस दिया? नहीं, कभी नहीं। वे तो सब हड़प जाते हैं। हम लोगों के अज्ञान का फायदा उठाकर ये गुरु मज़हब वाले हमें लूट लेते हैं, हमारा नाजायज़ फायदा उठाते हैं।

हाँ, मैं आपसे बार-२ कहता हूँ कि आप अपनी समझ-बूझ और खुशी से जो मर्ज़ी मेरे मन्दिर को दो। मगर इस अज्ञान से कि मैं तुम्हारे अन्दर या बाहर प्रकट होता हूँ और तुम्हारी मदद कर जाता हूँ, या आपके मरने के बाद मैं आपको सत्लोक में ले जाऊंगा, इस भरोसे या धोखे में आप मुझे कुछ मत दो। मैं तुम लोगों का एक भी पैसा लेने को तैयार नहीं हूँ, हरगिज़ नहीं हूँ। क्योंकि मैं तो किसीके अन्दर जाता नहीं। हाँ! यदि आप ज्ञान प्राप्त हो जाने के कारण या ज्ञान के एवज़ में यदि कुछ खिदमत करना चाहते हो, तो मुझे खुशी से स्वीकार है, क्योंकि मैं उसका मुश्तहक हूँ। यदि कोई इस रूप में मुझे धन देना चाहे कि मैंने उसके अन्दर प्रकट होकर उसकी मदद की या मेरे प्रसाद से किसीके बच्चा हो गया, तो ऐसा धन मैं हरगिज़ नहीं लेता। मन्दिर चले या न चले, मैं हूँ सत्पुरुष। मैं संसार मैं आया भी इसलिये हूँ कि मैं संसार वालों को सच्चाई बता दूं। दो, ज़रूर दो। दुःखियों की मदद करो। मैं यह नहीं कहता कि मत दो। दान देना बहुत ही अच्छा है। जो देता है, उसे ही

मिलता है। यदि दोगे नहीं तो पाओगे कहाँ से ? मैंने सारी ज़िन्दगी दिया ही दिया है। उसके बदले मुझे बहुत मिला है। परन्तु आप लोगों की आँखों में धूल डालकर कुछ नहीं लूंगा। हाँ ज्ञानदाता की हैसियत से आप मुझे जो दो मैं खुशी से स्वीकार करता हूँ। यहाँ मन्दिर है, हस्पताल है आप आते हैं, आपको खाना मिलता है आपकी जो सेवा हो सकती है की जाती है। इसमें खर्चा तो होता ही है। अगर आप दिल से तथा अपनी खुशी से मन्दिर की मदद करना चाहते हैं तो ज़रूर करो। यहाँ एक भी पैसे की हेराफेरी नहीं होती।

अच्छा है आप लोग आ गये हैं। आज मेरा आखिरी सत्संग है। मैंने आपको बहुत कुछ कह दिया। इस दुनिया में रहते हुए भी दुनिया में फँसो नहीं सुखी रहोगे। अगर फँसोगे तो दुःख उठाओगे। वह देखो यह जगन्नाथ अलवर से यहाँ आया हुआ है। इसका लड़का बहुत ही नालायक है वह इसका कहना नहीं मानता, बल्कि कभी-२ वह इसे जूतों से मारता भी है। फिर भी यह जगन्नाथ कहता है, "हाय मेरे बेटे ! ओह मेरे बेटे !" जगन्नाथ रात को मेरे पास आया, बहुत रोया। मैंने उसे कहा, "लानत है तुम पर भाई ! तुम मोहमाया में फँसे रहते हो, कहते हो "हाय मेरा बेटा, हाय मेरा पोता !" वह सोने की बाली किस काम की, जिसके पहिनने से कान दुखें ? मत पहिनो उसे भाई ! पहिले मन की शान्ति ज़रूरी है। परन्तु हम लोगों को माया ने इतना दबाया हुआ है, इतना दबाया हुआ है कि जिसका कोई हिसाब ही नहीं। हम सब मोह में फँसे हुए हैं। मैं आज आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप कुछ मत करो मैं सभी के लिए अभ्यास के भी खिलाफ़ हूँ। सबसे पहिले सच्चे बनो, अपने मन को साफ़ करो। जब तक आपका मन साफ़ नहीं, घण्टों तक कानों में अंगुलियाँ डालकर बैठने से कुछ

भी नहीं होगा। न तुम्हें प्रकाश आयेगा न मूर्त्ति बनेगी और न ही रूप बनेगा। जब तक मनुष्य के अन्दर ज़बरदस्त तड़प नहीं होती तब तक गुरु नहीं मिलता।

हम लोग तो दुनिया में फँसे हुए हैं। हैं कि नहीं? तो गुरु हमारे लिए क्या करता है? बाहर के गुरु की ड्यूटी क्या है? उसकी ड्यूटी है सच्चाई बता कर तुम्हें इस दुनिया के मायाजाल से बाहर निकालना। बस, और कुछ नहीं। यही मैं कहता हूँ मोह को छोड़ो। यदि तुमने अपने बाल-बच्चों से मोह तोड़ कर गुरु से या बाबा फकीर से मोह जोड़ लिया तो, वह भी तो मोह है क्या फ़र्क हुआ? किसीने पुत्र के साथ मोह किया, तो किसीने गुरु के साथ। कोई पुत्र या स्त्री के मरने पर रोया तो कोई गुरु के मरने पर। फ़र्क क्या पड़ा? ज़रा गौर करो मेरी बात पर। जब हज़ूर सावन सिंह जी ने चोला छोड़ा तो कितने लोगों ने खुदकुशी कर ली। मैं तुम लोगों को फकीर चन्द के जाल में नहीं फँसाना चाहता। यह ग़लत है। सोचो मेरी बात को, मैं क्या कह रहा हूँ? गुरु से मोह केवल इतना ही हो कि सत्संग में बैठकर ग़ौर से गुरु की बात को सुनो, समझो फिर उस पर अमल करो। बस! असली गुरु तो तुम्हारे अन्तर में है, जिससे तुम्हें प्रेम करना हैं। वह तुम्हारा अपना आपा है। मैं दुनिया को धोखा नहीं देना चाहता। मैं यह नहीं चाहता कि तुम फकीर चन्द को ही पूजो।

तुम्हें कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। बस शरणागतम्। केवल गुरु को शरणागत हो जाओ। ज्यों-२ मन साफ़ होगा, अन्तर में ठहरता जायेगा, शब्द प्रकाश अपने आप ही खुल जायेगा। जब तुम सच्चे होकर, शरणागत होकर, अन्तर में चले जाओगे तो मन अपने आप ख़त्म हो जायेगा और मन ख़त्म होने पर तुम अपने आप ही शब्द

प्रकाश में चले जाओगे। मैं आपको आसान से आसान तरीका बता रहा हूँ। पहिले मैं भी अभ्यास कर-कर के मर गया। मगर अभ्यास हर आदमी के वश का रोग नहीं है। हर आदमी अभ्यास नहीं कर सकता। यह तो जिसके भाग्य में होगा, उसे ही मिलेगा। हरएक व्यक्ति इसका अधिकारी भी नहीं है।

सुरत समानी शब्द कुण्ड में, निरत रहे लव लाय।
पिया बिन यों प्यारे तड़पी, तड़प-२ जिया जाय॥

अब कबीर साहिब होते तो मैं उनसे पूछता कि पिया बिन तड़पी। समझ में नहीं आता। मैं भी पिया को कभी मानता था लेकिन आखिर में पहुँचा कहाँ? अरे भाई! वह पिया तुम्हारा अपना आपा है, कोई दूसरा पिया नहीं। परन्तु भ्रम जल्दी जाता नहीं। क्यों नहीं जाता? क्योंकि मन के अन्दर जितने ख्यालात हैं, जब तक सब साफ नहीं हो जाते. तब तक भ्रम जा नहीं सकते। यही कारण है कि जितने भी प्रकार के अभ्यास हैं, इस मन को साफ करने के लिए ही हैं। सहस्र-दल कमल में, मन के अन्तर से अनेक प्रकार के ख्यालात उठते हैं। त्रिकुटी में केवल प्रेम ही रह जाता है अपने इष्ट का। जब प्रेम अति गहरा हो जाता है, तब वही मन साफ होता हुआ अनेकवाद को छोड़कर, एक जगह टिक जाता है, मन टिक जाने से आदमी को प्रकाश शब्द आ जाता है और उससे आगे बाकी तुम्हारी ज़ात ही रह जाती है। यह है परमार्थ। ख्याल की दृष्टि से मैं तुमको कहता हूँ – तुम गृहस्थी हो। तुमको गृहस्थी का ख्याल देता हूँ। विषय-विकार कम करो। नौजवान लड़कों को चेतावनी देता हूँ कि वे छोटी उम्र से ही ब्रह्मचर्य का पालन करें। घरों में शान्ति रखो। बेकार मत रहो। अपनी ज़ाती गरज़ के लिए किसीके साथ हेराफेरी मत करो। यदि तुम इतना

भी कर लो तो परमार्थ तुम्हारे लिए कठिन नहीं है। मन की चंचलता सभी बुराइयों की जड़ है इसके कारण ही हम जीवनभर दौड़ते ही रहते हैं, कहीं चैन नहीं मिलता। हरएक इन्सान कोई न कोई सहारा चाहता है। एक इष्ट मान लो और उसीको अपना सहारा मान लो, सहारा बना दो। मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरा सहारा लो। किसीका सहारा ले लो। जिसके रूप में तुम्हारा अगाध विश्वास हो, उसको ही अपना इष्ट बना लो। व्यास जाओ आगरे जाओ, हिन्दू बनो, मुसलमान बनो कोई फ़र्क नहीं। मुझे इससे कोई सरोकार नहीं। मैं तो मज़हबों के चक्कर से कब से निकल चुका हूँ। आपसे बिलकुल सच्चो बात कह रहा हूँ। तुम लोग आ जाते हो, अपनी ज़िम्मेवारी को महसूस करता हूँ और सोचता हूँ कि मैंने अपनी ज़िम्मेवारी पूरी तरह से निभा दी है। कभी सोचता हूँ कि क्या तुम मेरे पास से कुछ ले जा सकते हो? मेरे द्वारा अपना कुछ अज्ञान मिटा सकते हो और ज्ञान ले जा सकते हो और मेरे पास बैठने से किसी हद तक तुम्हें शान्ति मिलती है?

प्यारे सत्संगियो! यदि आपको मेरी रेडिएशन जाती है तो आपकी रेडिएशन भी मेरे पर प्रभाव डालती है। डालती है कि नहीं? हज़ारों धोखेबाज़, चार-सौ-बीस, गन्दे लोग आकर मुझे जफ्फी मार लेते हैं, मेरे पाँवों को दबाते हैं तो क्या उनकी रेडिएशन का मुझ पर असर नहीं होगा? होगा, ज़रूर होगा। मैं उस रेडिएशन को महसूस करता हूँ। भाई पृथ्वीनाथ! गुरु बनना कोई आसान काम नहीं है। बड़े-२ सन्त, बड़े-२ महात्मा अपने लक्ष्य से गिर जाते हैं। मैं क्या करता हूँ? मैं इस रेडिएशन से कैसे बचता हूँ? मैं आप में से किसीसे प्यार या मोह नहीं करता। यह बिलकुल सच्ची बात है। न मैं बेटे को प्यार करता हूँ, न

बेटी को, न आपको। क्यों नहीं करता ? इसलिये कि यदि मैं तुमको प्यार करूँ, तो तुम्हारे विचारों (अच्छे या बुरे दोनों) का प्रभाव मुझ पर पड़ेगा तुम्हारी रेडिएशन मेरे में आयेगी। हाँ भाई ! तुम्हारे प्रेम का जवाब ज़रूर प्रेम से ही देता हूँ तुम लोगों का अन्न यदि मैं खाऊँ, तो मैं कहाँ जाऊंगा ? मुझे याद है, एक बार मास्टर मोहन लाल एक शराबी को यहाँ ले आया, जिसका नाम है जलन्धर सिंह। उसने हमको नंगल डैम दिखाया। हम कुल मिलाकर सात आदमी थे उसने डैम देखने के सभी के तीन-२ रुपये भी दिये, हमें खाना भी खिलाया। अब वह मुझे क्यों ले गया वहाँ ? उसका मुक़द्दमा था ज़मीन का एक एम. एल. ए. के साथ। उसने मुझे बताया, "बाबा जी ! मैं अदालत में गया, मैं हैरान हो गया कि वकील, मैजिस्ट्रेट आदि सब मेरे हक में हो गये।" अब उसने मेरी खूब सेवा की इस विश्वास से कि मेरे वहाँ जाने से फैसला उसके हक में ही हुआ। मैंने ग़ल्ती की उसे बताया नहीं कि मैं वहाँ प्रकट नहीं हुआ था।

जब मैं शाम को घर आया और लेटा हुआ था, तो मेरा मन उछालें मारने लगा, कभी इधर, कभी उधर मैं बेचैन सा हो गया। गोपाल दास मेरे पास बैठा हुआ था मैंने उसे कहा, "गोपाल दास ! मुझे क्या हो गया है ?" एकदम मुझे ध्यान आया कि मैंने जलन्धर सिंह को सच्ची बात नहीं बताई थी और उसका अन्न भी खाया था। इस विचार के आते ही मैंने फौरन नौकर को बुलाया और उसे दस रुपये देकर कहा, इन्हें मन्दिर में जमा करा दो। ज्यों ही मैंने ऐसा किया मेरा मन एकदम शान्त हो गया। यह मेरी रिसर्च है। मैंने प्रण किया था कि मैं इस राह पर सच्चा होकर चलूँगा और जो ज्ञान प्राप्त होगा उसे संसार को बता जाऊंगा। मेरा तजुर्बा कहता है कि रेडिएशन ज़बरदस्त

काम करती है। उससे बचने का उपाय यह है कि आप सच्चे रहो। अपनी ज़ाती गरज़ के लिए किसीसे कोई उम्मीद न रखो। मैं ऐसा ही करता हूँ, बस! फिर मुझे कोई दोष नहीं। तुम्हारा असर, तुम्हारी रेडिएशन तो मेरे में तब आयेगी, यदि मैं तुमसे लगाव रखूँ या मोह रखूँ या मुझे तुमसे कोई गरज़ हो। जब मेरा कोई स्वार्थ ही नहीं, कोई गरज़ ही नहीं, तो फिर डर किस बात का, फँसना किस बात का? समझते हो न मेरी बात को? यह रेडिएशन का असूल ग़लत नहीं है। मैंने कल भी आपको कहा था कि पहिले जो छूतछात का विचार था कि किसी का छुआ हुआ नहीं खाओ, उसमें नफ़रत का भाव नहीं था, ऊँचनीच का भाव नहीं था। उसका असली मतलब यह था कि दूसरे आदमियों के ख्यालात का प्रभाव उन पर नहीं आये, उनकी बुरी रेडिएशन का उन पर असर नहीं पड़े। स्त्रियाँ अपने पति के बिस्तर के सिवाय, किसी और के बिस्तर पर नहीं सोती थीं, इसका मतलब यह नहीं कि औरों के बिस्तर खराब होते हैं। मतलब यह है कि जब व्यक्ति बिस्तर पर सोता है, तो अपनी रेडिएशन उसमें छोड़ता है, जिसके अन्दर जैसे जज़बात होंगे वही तो निकलेंगे और वही रेडिएशन दूसरों पर प्रभाव डालेगी।

मैं आपको सत्संग कराता हूँ अगर मेरा अपना मन साफ़ नहीं, मैं कपटी हूँ, मैं कोई गरज़ रखकर सत्संग कराता हूँ तो मैं तुमको ज्ञान नहीं देता, बल्कि ज़हर देता हूँ। अगर मेरा मन साफ़ नहीं है या मैं अपने नाम या मान के लिए ही सत्संग कराता हूँ, तो मैं पाखण्डी हूँ। उसका असर तुम पर पड़ेगा कि नहीं। जो साधु, सन्त और महात्मा खुद बाअमल (practical) नहीं हैं और सत्संग कराते हैं, वे भोलेभाले लोगों की ज़िन्दगी के साथ खेलते हैं, उनको मीठा ज़हर देते हैं।

समझते हो मेरी बात को पृथ्वीनाथ ! "If you want to be a saint, be a true man." सोचो मेरी बात को। जब यह पता चल गया कि Law of Radiation ज़बरदस्त काम करता है और सत्संग देते समय मैं यह नहीं देखूं मेरा मन कहाँ और कैसा है, तो आप पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? अगर मैं इस ख्याल से सत्संग कराऊँ कि मेरी इज़्ज़त हो जाय, मेरा मान बढ़ जाय, मुझे धन-दौलत मिल जाय, तो मैं आपका मुजरिम हूँ, अपराधी हूँ। मैं धोखेबाज़ हूँ आपको धोखा दे रहा हूँ। अगर मैं गन्दा हूँ, मेरा मन साफ़ नहीं तो मेरे सत्संग सुनने से तुम्हारा भला नहीं होगा, बल्कि नुकसान हो जायेगा और मैं आपका गुरु नहीं, बल्कि दुश्मन सिद्ध हूँगा।

ये जितने महात्मा और गुरु हैं, मैं उनको साफ़-२ कह देना चाहता हूँ कि ऐ महात्माओ, गुरुओ! पहिले अपने मन को साफ़ करो, ठीक करो फिर सत्संग देना, नहीं तो तुम्हारे अपवित्र मन के कारण तुम्हारे सत्संग सुनने से हज़ारों भोले-भाले लोगों की ज़िन्दगियाँ बर्बाद हो जायेंगी। Law of Radiation को कोई रोक नहीं सकता, कोई नहीं रोक सकता। काश ! मुझे इस बात का पहिले से पता होता। तुम कभी पाखण्डी गुरुओं के चक्कर में नहीं पड़ना। तुम लोग भूले हुए हो, भ्रम में हो। अपना ख्याल रखो।

"कर्म जो-जो करेगा तू, अन्त में भोगना पड़ेगा।"

आज मैंने आपको बहुत कुछ कह दिया। मैं अब इस संसार से उठ जाना चाहता हूँ। मगर पिछले कर्म जो किये हुए हैं उन्हें तो भोगना ही पड़ेगा।

कब गुरु मिलेंगे सनेही आय।
लोभ, मोह का जाल बना है पाँव रहे उरझाय।
जाकी जासे लगन है लागी, सो वा घर को जाय॥

यही मेरा तजुर्बा कहता है। क्योंकि कबीर साहिब ने

भी यही बात कही है, इसलिये मुझे यकीन हो गया कि मेरी ज़िन्दगी का तजुर्बा ठीक है। आपको कुछ नहीं करना। अभ्यास नहीं बनता तो कोई बात नहीं, प्रकाश नहीं दिखता कोई बात नहीं, परवाह मत करो। एकान्त में बैठो, अपने अन्तर में, सच्चे दिल से अपने आपको उस मालिक, परम-तत्त्व के हवाले कर दो, शरणागत हो जाओ। जो-२ गलतियाँ तुमने की हैं, मालिक के आगे उन्हें कबूल कर लो। मालिक दया करेंगे। तुम्हारा मन साफ़ हो जायेगा। जब तुम्हारा मन साफ़ हुआ नहीं, कुदरत अपने आप तुम पर रहमत हो जायेगी। बस ! यह सच्चाई है और कुछ नहीं। कल मैंने आपको बताया था कि जब कोई इन्सान सच्चे दिल से प्रार्थना करता है, तो उसके दिल में ख़ला (vaccum) आ जाती है। परसों रूप लाल की औरत यहाँ आई हुई थी। उसका नाम कमला है। उसने मुझे बताया कि किसीने उनके मकान पर कब्ज़ा कर लिया था और मकान वापिस नहीं मिल रहा था। फिर वह बोली, "बाबा जी ! मैं बहुत दुःखी थी। मेरा कोई बस नहीं चलता था। मैं दिन-रात रोती रहती थी। सोचती थी इस दुनिया में मेरी मदद करने वाला कौन है ? मैं बहुत ही चिन्तित थी। इतने में आप ज़ीने से उतर कर आये और बोले, "कमला तू रोती क्यों है तुम्हें मकान का कब्ज़ा मिल जायेगा।"

उसकी श्रद्धा और विश्वास ने ही मेरा रूप बना लिया और मेरा ध्यान किया। उसका काम बन गया। दूसरे दिन सुबह को उसके मकान में रहने वालों ने आकर कमला को उसके घर की चाभी पकड़ा दी। कमला के लिए तो वह चमत्कारों का चमत्कार था। वह मेरे पास आई पाँच रुपये, फूलों का गुलदस्ता, बिस्कुटों का डिब्बा तथा मिश्री का डिब्बा बड़े प्रेमभाव से दे गई। मैं सोचता हूँ मैं तो गया

नहीं वहाँ, यह क्या लीला है ? देखो, मेरे दोस्तो ! जब मैं कहता हूँ कि मैं नामीधाम से आया हूँ तो क्या मैं झूठ बोलूँगा ? मैं सत्य कह रहा हूँ। मेरा दिमाग़ ही इस किस्म का बना है और मैं इस दुनिया में आया भी इसलिये हूँ कि रूहानियत की दुनिया के पाखण्ड-जाल को साफ़ कर जाऊँ और यह बता जाऊँ कि सच्चाई यह नहीं है। मेरे ग्रह ही ऐसे हैं, मेरे हाथ की रेखाएँ ही ऐसी हैं। मैं तो सच्चाई बयान करता हूँ।

कमला के साथ ऐसा चमत्कार क्यों हुआ ? वह एक पतिव्रता स्त्री थी। पन्द्रह साल से वह अपने पति की सेवा कर रही थी। चूँकि उसका मन पवित्र था, जब वह दुःखी हुई, तो कुदरत ने उसकी मदद की। ऐसे करिश्मे उनके साथ घटते हैं, जिनका मन पवित्र होता है। इसलिये मन की पवित्रता बहुत ज़रूरी है। यही कबीर कहते हैं यही सभी सच्चे सन्त तथा महात्मा कहते हैं। मैंने आपको सच्चाई बयान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आपसे कुछ नहीं छुपाया। यदि मैं परदा रखकर गुरुआई करता तो आज मैं करोड़ों रुपयों का मालिक होता।

जिस तरह लोगों को मेरा रूप प्रकट होता है और उनके काम कर जाता है, अगर मैं इसको परदे में रखकर यह नहीं बताता कि मैं कहीं नहीं जाता, तो जितना मर्जी आता तुमसे रुपया इकट्ठा करता परन्तु मैंने यह काम नहीं किया। मैंने गुप्त राज़ को खोल दिया और आपको सच्चाई बता दी। आप लोग अभी चले जाओगे। मैं भी अमरीका जा रहा हूँ। अगर ज़िन्दा रहा तो आऊंगा, क्या पता ? शरीर नहीं चलता, अब चला जाऊंगा।

सबको राधास्वामी !

सत्संग

परमसन्त पूर्णधनी मालिकेकुल हजूर

मानव दयाल जी महाराज

उज्जैन 5-2-91 (सायंकाल)

'सत्संग की महिमा'

चल गुरु के सत्संग री, मेरी सुरत सहेलो।
सतसंगत अमृत जल बरसे, सत्संग निर्मल गंग री।
सतसंग प्रेम सिन्धु है सजनी, उमड़े प्रीत तरंग री।
बास सुबास मिले सतसंगत, पावे रंग सुरंग री।
सतसंगत का ध्यान रहे नित, कीट सहज हो भृंग री।
राधास्वामी गुरु की कर सतसंगत, काल करम कर भंग री।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि, चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, सद्गुरुरूप परमप्रिय सत्संगी भाइयो और बहनो ! जब भी मैं यहाँ आता हूँ और आप लोगों के बीच अपने कुछ अनुभव बाँटने की कोशिश करता हूँ तो मुझे यह पता नहीं चलता कि क्या कहा जा रहा है। सत्संग एक धारा है। यह धारा सत् से आती है और उस धारा में न ही केवल सुनने वाले सत्संगी बहते हैं

बल्कि उस धारा की जो नहर है, वह टूट जाती है और केवल लहर रह जाती है। नहर है धारा। जैसे मेरे प्यारे भट्ट जी ने आपको बताया कि कबीर साहिब ने राधास्वामी की गुप्त शब्दों में व्याख्या करते हुए कहा :—

कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई बहाय।
ताहि उलट सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय॥

वह सद्गुरु जो इस जगत से परे है, जो हमारा लक्ष्य है, इष्ट है, वह ऊपर बैठा हुआ हमारे काम का नहीं है, हालाँकि हमें जाना उसीके पास है। जब तक वह स्वयं लहर में आकर के नहर नहीं बनता, तब तक वह खेतों को पानी नहीं दे सकता। इसलिये परमतत्त्व आधार स्वयं नहर बनकर के आता है। 'कबीर धारा अगम की'। अगम पर पहुँचा नहीं जा सकता। अगम की धारा इतनी विशाल है कि उसको समझा नहीं जा सकता।

'तेरी लीला कौन समझे, तू तो अपरम्पार है।
एक दृष्टि से तेरे, दुःखियों का बेड़ा पार है॥'

उस मालिक की लीला अथवा धारा इतनी अपार है है कि व्यक्ति चकित रह जाता है, हैरान हो जाता है। आप इस पृथ्वी पर हैं आपकी अर्थात् इन्सान की हस्ती क्या है? सारे सौरमण्डल में यह पृथ्वी एक छोटा सा टुकड़ा है। हाँ सौरमण्डल के अन्दर तो इसकी हस्ती है। सौरमण्डल क्या है? सौरमण्डल में पृथ्वी, चन्द्रमा, बुध आदि सब सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं क्योंकि सूर्य से ही शक्ति मिलती है। सूर्य परमतत्त्व का अंश है। मगर सूर्य का मण्डल आकाश-गंगा में कोई हस्ती नहीं रखता। आकाशगंगा में इस सूर्य से भी बड़े-२ सूर्य हैं और अरबों सूर्यमण्डल परिक्रमा कर रहे हैं, आकाशगंगा के केन्द्र की। हमारा सौरमण्डल परिक्रमा

कर रहा है—परमेष्ठी की। वेदों में, ब्राह्मण ग्रन्थों में परमेष्टी कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थ जगत् की व्याख्या करते हैं। वेदों में दो विद्याएँ हैं—(1) ब्रह्मविद्या (2) ब्राह्मण विद्या। एक है मन्त्र वद्या और दूसरी है यज्ञविद्या। यह सारा जगत् यज्ञ है। इस यज्ञ का सम्बन्ध परमतत्त्व के एक मन्त्र से होता है। मन्त्र हमें आत्मा के ज्ञान की तरफ ले जाता है। आत्मा के ज्ञान से अभिप्राय है—अपनी ज़ात का ज्ञान, अपनी विशुद्ध आत्मा का ज्ञान, जिस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद कुछ जानने की ज़रूरत नहीं रहती। सन्तमत और सनातन धर्म की यदि कोई पहिली और अन्तिम किताब है तो वह है भगवद्गीता। भगवद्गीता भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं गाई। स्वामी जी महाराज ने क्या कहा ?

'राधास्वामी गायकर जनम सुफल कर ले।
यही नाम निज नाम है, मन अपने धर ले ॥'

गाने का मतलब है अपने जीवन में उतार लेना। राधास्वामी क्या है ? राधास्वामी एक अवस्था है। हम स्वयं पहिले मालिक से अलग होकर धारा बने। स्वामी से या मालिक से अलग होने के बाद हमें विरह हुआ, तड़प हुई। तब हम अपने स्वामी से मिलने के लिए धारा से राधा बने। तब राधास्वामी की अवस्था को प्राप्त करके अपने स्वामी से मिल गये। यह अवस्था हमें सद्गुरु की दया, मेहर और प्रेम के कारण मिली।

'गुप्त रूप जहाँ धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई, जहाँ कोई विश्राम ॥'

आप राधास्वामी को किसी व्यक्ति से सम्बन्धित मत करो। राधास्वामी असली नाम है। यह नाम आदिकाल से चला आ रहा है। गोपालसहस्रनाम में भी यह नाम आता है। तो राधास्वामी क्या है ?

'गुप्त रूप जहाँ धारिय'

जब कोई सृष्टि नहीं थी, न सत् था न असत् था, उस समय कोई रचना नहीं थी। कोई देवी-देवता या ब्रह्म की शक्तियाँ नहीं थीं। केवल एक तत्त्व था। उपनिषदों के अनुसार उस परात्पर ब्रह्म में एक हिलोर आई या मौज आई। उसने अपने आप से कहा :—

'एकोऽहं बहु स्याम्' अर्थात् मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ। इसी सत्य को स्वामी जी महाराज ने गुप्त शब्द एवं सृष्टि से पहिले परात्पर ब्रह्म की तरफ इशारा किया है और कहा है कि वह गुप्त शब्द प्रकट हुआ, जिसमें से राधा और स्वामी अर्थात् सुरत और शब्द दो धाराएँ बह निकलीं। इसलिये उस प्रकट शब्द को जो गुप्त अवस्था में अनाम था, राधा-स्वामी नाम में प्रकट कर दिया गया। जब प्रेम से प्रेरित होकर राधा धारा बन जाती है और मालिक की दया से शब्द में विलीन होकर परमतत्त्व में विलीन हो जाती है तो वह अपनी निज अवस्था में पहुँच जाती है। स्वामी जी महाराज ने कहा, "जब मैं वहाँ जाता हूँ, जहाँ से मैं आया हूँ तो क्या हालत होती है ?

नहिं ख़ालिक मख़लूक न ख़िलकत।
कर्ता कारण काज न दिक्कत॥
राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं था सो॥

कुछ नहीं का मतलब है कि हम अपनी बुद्धि के मुताबिक अपने संस्कारों के मुताबिक, जो हम समझते हैं, मालिक वह नहीं है। मीरा ने भगवान कृष्ण को अपना इष्ट माना। 'मन्ने की गति कही न जाये'। सद्गुरु से चाहे किसी भी रूप का प्रेम करो, लेकिन प्रेम करो। उसे पिता मानो, भाई मानो, दोस्त मानो, पुत्र मानो। सद्गुरु से आप

कोई भी रिश्ता जोड़ लो। मीरा ने इष्ट को आध्यात्मिक पति मान लिया था और उससे इतना अगाध प्रेम किया कि जब मीरा बच्ची थी तो भगवान् कृष्ण बच्चा बनकर उसके साथ खेला करते थे। जब मीरा बड़ी हुई तो उसका विवाह मेवाड़ के महाराणा से कर दिया गया। मगर उसका संकल्प दृढ था। उसने महाराणा को बता दिया कि उसका विवाह भगवान कृष्ण के साथ हो चुका है। मीरा कृष्ण से कमरे के अन्दर बात करती रहती थी, जिसे महाराणा सुनता रहता था। जब अन्दर जाता तो मीरा के अतिरिक्त वहाँ और कोई नहीं होता था। कुछ समय के बाद महाराणा की मृत्यु हो गई। बाद में मीरा को गुरु रैदास से ज्ञान प्राप्त हुआ। तब मीरा को पता चला कि भगवान् कृष्ण अविनाशी दूल्हा हैं। एक पद्य में मीरा ने लिखा है :—

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।
ज़हर का प्याला राणा ने भेजा,
पीवत मीरा हाँसी रे॥

अन्त में मीरा कहाँ पहुँची ?

मीरा कहे प्रभु कबहू मिलोगे।
अजर अमर अविनाशी रे॥

गुरु रैदास जी के कहने पर मीरा ने भगवान् कृष्ण को अविनाशी दूल्हा माना। मेवाड़ में जब मीरा को अधिक दुःख दिया गया, तो उसने सन्त तुलसी दास जी को एक पत्र में अपना सारा हाल लिखकर भेजा। तुलसी दास जी ने पत्र के जवाब में लिखा :—

जा के प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥

इस पद को पढ़कर मीरा ने मेवाड़ त्याग दिया और वृन्दावन चली गई। मीरा सद्गुरु के असली स्वरूप को

समझ गई थी।

आज के शब्द में 'मुरत सहेलो' क्यों कहा है? इसकी व्याख्या आगे करूंगा। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि परमतत्वाधार को चाहे आप राम समझो या कृष्ण समझो, किन्तु उस रूप को उसी अविनाशी, अनन्त, हर प्रकार के रंगरूप से परे उसी धुरधाम निवासी का रूप मानो, क्योंकि उस रूप से प्रेम करते-२ तुम अन्त में उसी निज अवस्था, परात्पर ब्रह्म में विलीन हो जाओगे जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अमुक वस्तु है और अमुक नहीं है।

स्वामी जी महाराज ने कहा :—

'राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहीं कुछ नहीं कुछ नहीं था सो॥'

तुम समझते हो कि वह कुछ नहीं है, लेकिन वह है ज़रूर। वह सब कुछ है।

कोई अगुण कहे, कोई सगुण कहे।
कोई निराकार, साकार कहे॥

कुछ लोग उस मालिक को निर्गुण कहते हैं और कुछ लोग उसे सगुण कहते हैं। निर्गुण कहने वाले भी ठीक हैं। क्योंकि गुणों को एक सीमा होती है। जैसे लम्बा, चौड़ा, गोरा, काला, मुकुटधारी, धनुषधारी आदि। अपन'-२ विश्वास है। यही कारण है कि तुलसी दास जी द्वारिकाधीश के मन्दिर में गये और कहने लगे :—

'तुलसी मस्तक तब निवे, जब धनुषवाण लो हाथ।'

इतना कहते ही मुरली के स्थान पर धनुष आ गया था। असलियत में न वह मुरली वाला है, न धनुष वाला है। यदि आपका प्रेम सच्चा व अगाध है तो मालिक को उसी रूप में प्रकट होना पड़ता है जिस रूप को तुम चाहते

हो। इसलिये मीरा ने तुलसी के राम को अपना कृष्ण माना।

वह सर्वशक्तिमान् है। मैं आपको इस्लाम धर्म के बारे में बताता हूँ। मुसलमान दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ता है। नमाज़ पढ़ने में कहता है :—

लाइलाहाइलिहलाह मोहम्मद-उल-रसूल इल्लाह।
रहमान उल् रहीम रब्बुल आलमीन।

यह हमारे ही वेदमन्त्र का अनुवाद है। वह देवताओं को मानते हैं। 'लाइलाहा' देवताओं में एक की पूजा करो। मैंने आपको बताया कि गुरु प्रकाश में रहता है, इसलिये सारे देवता उसके अन्दर रहते हैं। 'लाइलाहा इलिल्लाह मोहम्मद उल रसूल इल्लाह' मोहम्मद गुरु है, तुम गुरु के द्वारा ही खुदा के पास पहुँच सकते हो। 'रहमान उल् रहीम'। वह दयाल है, परम दयाल है। 'रब्बुल आलमीन' वह ब्रह्माण्डों का खुदा है। मोहम्मद साहिब ने यह तो नहीं कहा "रब्बुल मुसलमीन" जब वह रब्बुल आलमीन अर्थात् सारे आलम का खुदा है, तो क्या वह एक मस्जिद के अन्दर बैठा है? मोहम्मद साहिब ने कहा, "वह सच्चा मुसलमान नहीं जो दूसरे मज़हब की ताज़ीम नहीं करता।" मैं आपको सच्चाई बयान कर रहा हूँ। मस्जिद कहाँ है? अरे! जहाँ पर जा नमाज़ (मुसल्ला) बिछाया, वहाँ पर मस्जिद है। मैं आपको एक बात सुनाना चाहता हूँ।

1982 में महाराज जी की आज्ञा के मुताबिक मैं त्यागपत्र देकर भारत आ गया। देहली में विश्वविद्यालय ग्राण्ट कमीशन ने एक सम्मेलन किया, जिसमें फ्रांस, इंग्लैंड से दार्शनिकों को बुलाया था और भारत के भी हिन्दु-मुसलमान दार्शनिकों को बुलाया। सम्मेलन का विषय था, "हिन्दु धर्म और इस्लाम धर्म में साहश्य"। मैं सलवान

स्कूल में दशहरे का सत्संग दे रहा था। तभी टेलीफोन पर मुझे कहा गया "डा० शर्मा! आप 2, 3 घण्टे के लिए सम्मेलन में आ जायें।" जब मैं सम्मेलन में गया, तो उस वक्त गौहाटी के डा० शर्मा अपना लेख पढ़ रहे थे। वह अपने लेख के माध्यम से इस्लाम धर्म और हिन्दु धर्म की समानता पर प्रकाश डाल रहे थे। अब वहाँ पर एक फ्रांस के प्रोफेसर थे। पश्चिम के लोग समानता नहीं देखते, बल्कि अलगाव देखते हैं। वह खुदा को नहीं जानते। समानता का नाम ईश्वर है। फ्रांस का प्रोफेसर ईसाई था। उसने कहा, "हिन्दु धर्म और इस्लाम धर्म में समानता नहीं है, बल्कि असमानता है।" सम्मेलन का संयोजक डा० दुरानी उदयपुर में मेरा असिस्टेण्ट रह चुका था। उसने कहा, "गौहाटी के प्रोफेसर डा० शर्मा ने गलत कहा है। हम मोहम्मद को खातमुलनबीन मानते हैं।" अब मैंने उठ करके कहा, "मित्र! अब मेरा यह चोला प्रोफेसर का नहीं है। मेरा चोला अब सन्त का चोला है। लेकिन मैं आपको बताना चाहता हूँ कि इस चोले के अन्दर दर्शन का भेद क्या है? आप सब समानता के ऊपर व असमानता के ऊपर बोल रहे हैं। मगर क्या किसी ने कबीर साहिब को पढ़ा। कबीर साहिब का किसी ने नाम ही नहीं लिया।

तब मैंने उनको कबीर साहिब के इस शब्द के बारे में बताया—'सखिया वा घर सबसे न्यारा।' मैंने कहा कि भारतीय दृष्टि एकत्व की है और पश्चिमी दृष्टि अनेकत्व की है। एकत्व का मतलब है कि हरएक के अन्दर उसी मालिक को देखना। पश्चिम के दृश्टिकोण के अनुसार "मैं और तू दोनों नहीं रह सकते। मैं रहूंगा या दूसरा रहेगा।" अब मैंने डा० दुरानी को कहा "आपने एक बात तो सही कही है कि मोहम्मद साहिब को खातमुलनबीन अर्थात्

आखिरी गुरु कहा है। क्या आपने कभी यह सोचा कि क्या वह गुरु है ?" गुरु का रूप क्या होता है ? गुरु को जब तुम परमतत्त्व नहीं मानते, बल्कि शरीरधारी मनुष्य मानते हो, तो तुम गुरु के असली स्वरूप को नहीं समझ सकते। मोहम्मद का मतलब है गुरु, और गुरु हमेशा रहने वाला होता है। मैंने यह सब बात उनको बताई।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि राम रहीम करीम न केशो कि उस मालिक को हम जो कुछ मान लेते हैं, वह वैसा नहीं है। लेकिन वह है जरूर। उसके अतिरिक्त और कोई हस्ती है ही नहीं। स्वामी जी महाराज ने जो भी बात कही वह अनुभव के आधार पर कही। लोग सोचते हैं कि स्वामी जी महाराज ने जो कहा है, वह वेदों में नहीं है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में नासदीय सूक्त है, जिसके अन्दर लिखा है कि शुरू में न देवी थी न देवता थे न ब्रह्मा, विष्णु, शिव थे,न सत् था न असत् था। 'तदेकं तथा' वह था,जिसको हम परमतत्त्व कह रहे हैं। अब सोचो कि स्वामी जी महाराज की बात में और ऋग्वेद की इस बात में क्या भेद है ? वास्तविकता यही है कि चाहे आप उसे राम मानो या कृष्ण मानो – लेकिन उन्हें शरीरधारी न मानकर परमतत्त्व सर्वाधार मानो।

'कोई अगुण कहे कोई सगुण कहे'

सगुण का मतलब है कि उसको गुणों की सीमा में बाँधना कि वह काला है, गोरा है, लम्बा है, चौड़ा है, राम है कृष्ण है। लेकिन अगुण का मतलब है कि हम उस मालिक को किसी सीमा में नहीं बाँध सकते। अगर हमने उसे सीमा में ला दिया तो वह सर्वाधार नहीं है। अगुण का मतलब यह नहीं कि वह खाली है। यह जगत् सुन्दर है अर्थात् राधा सुन्दर है। सन्तमत यह नहीं कहता कि जगत् से नफ़रत

करो। जैसे वल्लभाचार्य जी ने कहा, "अद्वैत वेदान्ती मूर्ख हैं, जो कहते हैं कि यह जगत् भ्रम है। जगत् को भ्रम कहने का मतलब है अपने आपको भ्रम में डालना। अरे राधा या धारा उसी स्वामी अर्थात् मालिक की है। अगर धारा को यह ध्यान आ जाये कि मुझे स्वामी के पास वापिस जाना है, तो वह वापिस राधा बनकर चलेगी। जब तक वह स्वामी से नहीं मिलेगी, तब तक उसे न शान्ति मिलेगी न उसे परम अवस्था प्राप्त होगी।

गुप्त रूप जहाँ धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई, जहाँ कोई विश्राम॥

जब राधा और स्वामी, सुरत और शब्द दो हो गये तब फिर वह असली धाम पर पहुँचकर तब तक एक नहीं हो सकते जब तक सद्गुरु की मेहर नहीं होती और यह मेहर तब तक नहीं होती, जब तक तुम प्रेममय नहीं हो जाते। यह प्रेम का रास्ता है। जब धारा प्रेममय होकर राधा बन गई तब वह अवस्था आती है :—

बैठक स्वामी अद्भुती, राधा निरखनहार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार॥'

धारा से राधा बनकर जब राधा और स्वामी एक हो जाते हैं तब विश्राम मिलता है।

मैं आपको बता रहा था कि राधास्वामी हालत में रहने का नाम राधास्वामी गाना है। अब भगवद्गीता को गीता इसलिये कहा गया क्योंकि भगवान् कृष्ण उसके अन्दर रहते थे अर्थात् उसके अन्दर ओत-प्रोत थे। गीता में 18 सत्संग हैं। गीता के इस श्लोक में राधास्वामी परमतत्व का भेद छुपा हुआ है।

इदं तु ते गुह्यतमम् प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

अर्जुन बड़ा प्यारा भक्त था उसको कहा "अर्जुन ! इदं तु मैं तुम्हें ज़बरदस्त छुपा हुआ गूढ़ रहस्य बता रहा हूँ क्योंकि तू मेरा भक्त है। तेरे अन्दर ईर्ष्या नहीं है।" सद्गुरु के प्यार में ईर्ष्या नहीं होती। सद्गुरु का प्यार सबके लिए बराबर होता है। लेकिन सबका नमूना अलग-२ होता है। जब भक्त के अन्दर ईर्ष्या है वह असली भक्त नहीं बन सकता। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को आगे कहा :—

'ज्ञानं विज्ञानसहितम्' मैं तुम्हें एकत्व का ज्ञान, स्वामी अर्थात् मालिक का भी ज्ञान दूंगा और राधा का भी ज्ञान दूंगा। 'ज्ञानं विज्ञानसहितम्' तुम्हें प्रवक्ष्यामि ज्ञान, विज्ञान दोनों पक्ष बताऊंगा। 'यज्ज्ञात्वा' जिसका अनुभव करने के बाद, तू हर प्रकार की रुकावटों से आज़ाद हो जायेगा।" परमतत्त्वाधार, मालिकेकुल हमें वापिस ले जाने के लिए ही शरीर धारण करके जगत् में आता है। यही बात मैं आपको बता रहा था।

शब्द गुप्त जहाँ धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई, जहाँ कोई विश्राम॥

विश्राम आख़िरी अवस्था है और भक्त आख़िरी अवस्था तब तक नहीं पाता जब तक सद्गुरु की मेहर न हो। सद्गुरु की मेहर कब होगी, जब तुम प्यार करोगे। पहिले दूर का प्यार होता है, फिर नज़दीक का प्यार होता है। यह बात आज के शब्द में भी आई है।

'चल गुरु के सतसंग री, मेरी सुरत सहेली'

अब देखो ! दाता दयाल जी महाराज ने सुरत सहेली कहा है क्योंकि पुरुष तो केवल एक ही है, बाकी सब स्त्री है, राधा है।

सतसंगत अमृत जल बरसे, सत्संग निर्मल गंग री।

अमृत जल क्या है? अमृत जल है गुरु की वाणी।

सत्संग के अन्दर जो गुरु की वाणीरूपी धारा बह रही है, उसको सुनकर तुम अमरत्व को प्राप्त कर रहे हो।

'वाणी गुरु है गुरु वाणी है, वाणी अमृत सारे'

सत्संग के अन्दर सद्गुरु की वाणी को ध्यान से सुनो। क्योंकि सद्गुरु की वाणी की महिमा है और वह अमृत का सार है। अब सवाल पैदा होता है कि हम सत्संग के अन्दर कैसे बैठें? कैसे देखें और कैसे सुनें? हमारे व्यवहार के तीन तरीके हैं—(1) मन (2) वचन (3) कर्म। शिव-संकल्प का क्या अर्थ है? शिवसंकल्प का अर्थ है कि हम मन, वचन और कर्म से शुद्ध हों अर्थात् किसीको भी हम मानसिक, शारीरिक और शब्दों से भी दुःख न पहुँचायें। बार-२ आपको कहा जाता है कि घर में शान्ति रखो। माताएँ बच्चों को पीटती हैं। बड़ा होकर बच्चा औरतों से नफ़रत करेगा। यदि बाप मारता है तो बच्चा मर्दों से नफ़रत करेगा। किसी ऋषि ने कहा है :—

लालयेत्पंच वर्षाणि षोड़श वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥

अर्थात् पाँच वर्ष तक बच्चे को कुछ नहीं कहना चाहिए। सोलह वर्ष तक बच्चे को डाँट-फटकार करना चाहिए। सोलह वर्ष के बाद पुत्र के साथ मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए। मैं आपको दुनिया के व्यवहार की बात बता रहा हूँ।

मैं आपको सत्संग की अमृतधार के बारे में बता रहा था। अमृतधार वाणी की धार है। बच्चे की भलाई के लिए आप पीटते भी हैं, लेकिन कटु वचन मत बोलो। यदि आप शारीरिक रूप से किसीको दुःख नहीं दे रहे, मगर कटु वचन बोल रहे हैं तो आप हिंसक हैं। वाणी की हिंसा, वचन की

हिंसा, शारीरिक हिंसा से ज़्यादा ख़तरनाक है क्योंकि कटु वचन मन से नहीं निकलता।

जैन धर्म में 'क्षमा' के ऊपर अधिक ज़ोर दिया गया है। अब लोग कहते हैं कि हमने क्षमा कर दिया मगर मन से बात नहीं निकलती। यदि आपने अपराधी को माफ कर दिया, मगर मन के अन्दर बात को भुलाया नहीं तो आप अपने आपको दु:ख दे रहे हैं। दूसरे के कटु शब्द बार-२ याद करने से आपका मन दूषित हो जाता है। इस प्रकार मानसिक कर्म, वचन के कर्म सभी अधिक दु:ख देने वाला है तथा ख़तरनाक व ज़्यादा देर तक रहने वाला है। अब वचन जो है वह शारीरिक और मानसिक कर्मों के बीच में है। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैंने क्यों कहा कि वाणी से तुम गुरु को पहिचान सकते हो। जैसा मैंने आपको बताया कि मीठी वाणी शारीरिक और मानसिक कर्म के बीच में है। एक बात को हम गुस्से से भी कह सकते हैं और मीठा बोलकर भी कह सकते हैं। अगर आप प्रेम से कहेंगे तो आपसे हिंसा भी नहीं होगी और आपका मन भी शुद्ध हो जायेगा। मीठा बोलने में आपके पैसे नहीं लगते। इस-लिये वाणी आपके शारीरिक कर्म को बताती है और उसके अन्दर मन को भी बताती है। वाणी एक ऐसा दीपक है जो दहलीज़ पर रखा हुआ है, जिससे अन्दर भी रोशनी होती है और बाहर भी रोशनी होती है। इसलिये गुरु की वाणी आपको उभारने वाली है। जब मीठी वाणी से आपका मन साफ हो जायेगा तब आपको गुरु का दर्शन भी हो जायेगा। मेरे दोनों बच्चों के संस्कार मेरे जैसे ही हैं। वह कड़वा बोलकर किसी का मन नहीं दुखाते। गुरु की जो वाणी अर्थात् धारा है, वह अगम की धारा है, इसीलिये उसे 'निर्मलगंग' कहा गया है। यह स्वच्छ व विशुद्ध है। जब

यह बहती है तो मुझे न समय का होश रहता है, न इस बात का पता चलता है कि मैं क्या कह रहा हूँ। जब कभी यह ख्याल आता है कि मैं सब्संग दे रहा हूँ तो लगता है कि जैसे मैं अपने आपको सत्संग दे रहा हूँ। यह लहर गुरु के शरीर के अन्दर आती है। अगर तुम अपनी नहर को ढीला कर दो, मन के अहंकार को दूर कर दो, तो लहर इतनी तेज़ आयेगी कि नहर टूट जायेगी और लहर ही रह जायेगी। वह मौज की धारा बहती है। यह अवस्था सत्संग के अन्दर होती है। सत्संग वास्तव में निर्मल गंगा है। परम दयाल जी महाराज कहते थे, "मैं चाहता हूँ कि सारे सत्संगियों को एकदम ऊपर ले जाऊँ।" यदि आपको एक क्षण के लिए भी यह पता लगता है कि यह बहने वाली धारा आपके शरीर, मन, आत्मा को छू रही है, तो समझ लो कि आप ऊपर पहुँच गये। यह धारा अशुद्ध नहीं है। यह निःस्वार्थ है। वैसे गंगा है। तीर्थस्थानों पर बहुत दूषित वातावरण है लेकिन फिर भी आप हरिद्वार, ऋषिकेश जाइये, आपको शान्ति मिलेगी क्योंकि हमारे ऋषियों ने हज़ारों वर्षों तक गंगा के किनारे पर तपस्या की है, मालिक से मिलने के लिए प्रार्थना की है। वह किरणें आज भी वहाँ मौजूद हैं। लक्ष्मणझूले पर जो हवा लगती है उससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम साँस ले रहे हों। हर जी की पौढ़ी पर गंगा में डुबकी लगाने पर ऐसा लगता है जैसे सारे पाप धुल गये हों। सारा शरीर हल्का हो जाता है। गंगा में और सत्संग की गंगा में बहुत कुछ समानता है। सत्संग के व गंगा से होने वाले लाभ के चार दर्जे हैं। (1) सालोक्य—लोग हरिद्वार में रहते हैं। गंगा के किनारे नहीं जाते, मगर गंगा का पानी कुओं व नलों के ज़रिये पीते रहते हैं। वह गंगा की परिधि अर्थात् गंगा के लोक में हैं। इसलिये उनको भी

असर होता है। इसी प्रकार पहिले सत्संगी आता है और दूर बैठ जाता है मगर फिर भी उसे फ़ायदा हो जाता है। एक शहर में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। वहाँ पर सत्संग होता था। ब्राह्मण ने अपने बच्चों को सत्संग में जाने के लिए मना कर दिया और कहा, "यदि तुम सत्संग की जगह से निकल रहे हो, तो कानों में अंगुलियाँ डाल लिया करो।" ब्राह्मण का एक लड़का जा रहा था और साधु सत्संग दे रहा था। साधु बता रहा था कि देवताओं की परछाईं नहीं होती। ब्राह्मण के लड़के ने सुन लिया। अब कुछ दिनों के बाद ब्राह्मण के घर चोर आया। चोर ने काली देवी का रूप बना रखा था। लड़के ने देखा कि उसकी परछाईं थी। उसने डंडे मारने शुरू कर दिये। चोर पकड़ा गया। ब्राह्मण ने पूछा, "बेटे! तुम्हें कैसे पता चला कि यह देवी नहीं है?" लड़के ने कहा "पिता जी! मैं जा रहा था। ग़लती से मैंने साधु की बात सुन ली कि देवी-देवताओं की परछाईं नहीं होती।" उसी समय ब्राह्मण ने अपने बच्चों को कहा, "तुम सत्संग में जाया करो।" सत्संग में आने से तुमको वही लाभ होता है जो गंगा के किनारे या घरों में रहने वाले पंडों को व लोगों को होता है। इसे कहते हैं सालोक्य अर्थात् एक ही इलाके में रहने का सम्बन्ध।

(2) सामीप्य—अब आप गंगा के नज़दीक आ गये। आप सत्संग में गुरु के पास आकर बैठे और आपने नामदान ले लिया। इसको कहते हैं सामोप्य।

(3) सारूप्य—अब आप हर जी की पौढ़ी पर गये। आपने जंजीर पकड़ी और डुबकी लगाई। आपके चारों तरफ पानी ही पानी हो जाता है। आपका रूप पानी का रूप बन गया। इसी प्रकार सत्संगी नाम लेते-२ वह अवस्था प्राप्त कर लेता है, जिसमें हरएक के अन्दर गुरु की झलक दिखाई

देती है। यह अवस्था जीवन्मुक्ति की अवस्था है। इस अवस्था में हम जिससे प्रेम करते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। इस अवस्था में 'मैं' 'तू' का झगड़ा नहीं रहता।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी वा में दो न समाहिं॥

(4) सायुज्य—अब आपने गंगा में डुबकी लगाई और आप एक हो गये। जल से बाहर ही नहीं निकले। सत्संगी इस अवस्था में मालिक में विलीन हो जाता है।

सत्संग निर्मल गंगा है। इन चारों अवस्थाओं को एक पद्य में कहा है।

एक जन्म गुरु भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निजधाम॥

इस पद्य में चार जन्म की बात नहीं कही गई है। जन्म का मतलब है कि सत्संगी इसी जन्म में कुछ समय के लिए गुरु की भक्ति करे, गुरु की मुट्ठी-चापी करे। निकट आने से प्रेम होता है। फिर कुछ समय गुरु के बताये हुए नाम का जाप करे, गुरु का ध्यान करे। इससे वह जीवन्मुक्ति की अवस्था पा जायेगा। अर्थात् सारूप्य हो जायेगा और चौथी अवस्था में न तू रहेगी और न मैं रहेगी। यह सत्संग की महिमा है।

'सत्संग प्रेम सिन्धु है सजनी, उमड़े प्रीत तरंग री।'

सत्संग तो प्रेम का, ज्ञान का अथाह समुद्र है। सत्संग में बैठने से मालिक के प्रीत की तरंग उठती है। हालाँकि आप सब के अन्दर प्रेम का समुद्र ठाठें मार रहा है। लेकिन सद्गुरु के पास बैठने से जब प्रेम की तरंग उठती है तो वह दुनियावी तरंगों को रद्द कर देती है। मुझे भर्तृहरि का ध्यान आ गया। यह उज्जैन नगरी भी उन्हीं की नगरी है। कहते हैं कि वह अभी तक शरीर में हैं। वह राजा थे। ऐश-

परस्ती में थे। वह अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे। राजा भर्तृहरि ने तीन शतक लिखे। पहिला शतक श्रृंगार शतक है—भामिनी विलास—इसके अन्दर उन्होंने बताया कि गृहस्थ के अन्दर रहते हुए उन्होंने किस प्रकार काम को भोगा। दूसरा उन्होंने नीतिशतक लिखा जिसमें उन्होंने बताया कि दुनिया में रहकर कैसे व्यवहार करना चाहिए। तीसरा वैराग्यशतक लिखा जिसमें उन्होंने बताया कि दुनिया में रहकर दुनिया में फँसना नहीं चाहिए असल में उनके जीवन की एक बड़ी घटना मैं आपको बताना चाहता हूँ।

राजा भर्तृहरि अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे। उनके राज्य में किसी ब्राह्मण ने बहुत बड़ा अनुष्ठान किया। उस ब्राह्मण को अनुष्ठान का अमृतफल मिला। उसने सोचा कि हमारा राजा बहुत अच्छा है। मैं यह फल राजा को ही दे दूं। यह सोचकर ब्राह्मण ने वह अमृफल राजा को दे दिया। अब राजा ने वह अमृतफल अपनी रानी को दे दिया। रानी महल में आने वाले एक धोबी से प्यार करती थी, उसने वह फल धोबी को दे दिया। धोबी एक वेश्या से प्रेम करता था, उसने वह फल वेश्या को दे दिया। वेश्या ने सोचा कि मेरा जीवन तो बेकार है। हमारा राजा बहुत अच्छा है। अगर वह अमर हो जाये तो कितना अच्छा रहे। वेश्या जब दरबार में नृत्य करने के लिए गई तो उसने नृत्य करते-२ वह अमर फल राजा को पेश किया। राजा अमर फल को देखकर चौंक गया। उसने जब सारी बात का पता लगाया तो उसे वैराग्य हो गया। तब उन्होंने लिखा :—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साऽ न्यमिच्छतिजनं स जनोऽन्यसक्तः ॥
अस्मत्कृते परिशुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

जगत् में सद्गुरु के अतिरिक्त कौन सच्चा प्यार कर सकता है ? राजा भर्तृहरि ने कहा कि मैं रात-दिन जिसकी चिन्ता में रहा, वह किसी और से प्यार करती है। धोबी महारानो का प्यार पाकर किसी और पर निहाल है और यह नाचने वाली हम पर निहाल हो रही है। अरे ! महारानो को भी धिक्कार है, धोबी को धिक्कार है, वेश्या को धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार हैं।

मैं आपको तरंग के बारे में बता रहा था। कौन सी तरंग है जो हमें बाँधती है ? प्रेम की तरंग हमें ऊपर ले जाती है। भर्तृहरि ने इस सम्बन्ध में लिखा है :—

आशानाम नदी मनोरथजला।
तृष्णा तरंगाकुला ॥
मोहावर्त्तसुदुस्तरा अति गहना।
दुकूल चिन्तातटी ॥
तस्याः पारगता विशुद्धमनसा।
नन्दन्ति योगीश्वराः ॥

अब प्रेम की तरंग कैसे ऊपर ले जायेगी ? राजा भर्तृहरि कहते हैं कि आशा एक प्रकार की नदी है। उसके अन्दर मनोरथरूपी जल रहता है और तृष्णारूपी तरंगें होती हैं। जैसे इन तरंगों से लोग व्याकुल हैं अर्थात् नदी के अन्दर भँवर में फँसना है। हमारी आशाएँ मोह-भँवर हैं। इसको पार नहीं किया जा सकता। आशारूपी नदी बहुत गहरी है। नदी के दो चिन्तारूपी किनारे हैं। मैं कहता हूँ कि सारी चिन्ताएँ मुझे दे दो। मगर मुझे कोई चिन्ता भी नहीं देता। शुद्ध मन वाले सन्त उस आशारूपी नदी के पार जाकर आनन्द से रहते हैं। अब आप इस नदी से कैसे पार होंगे ? जब आप इसी नदी में आकर फँसेंगे, तो प्रीत की तरंगें उठेंगी, तो आशारूपी तरंगों का मुकाबला करके

आपको समता की ओर ले जायेंगी। आपके लोक और परलोक दोनों बन जायेंगे।

'वास सुवास मिले सतसंगत, पावे रंग सुरंग री।'

जैसा कि आपको शब्दानन्द जी ने बताया कि आपको जो कुछ मिलता है वह सत्संग से मिलता है। क्योंकि सत्संग के अन्दर सत् और प्रेम रहता है। प्रेम भी एक छूत की बीमारी है और सत्य भी एक बीमारी है। जब आप प्रेम करोगे, तो दूसरा भी प्रेम करेगा। इसलिये सत्संग के अन्दर जब गुरु प्रेममय है तो आपके ऊपर भी प्रेम का प्रभाव तो होगा ही। मैं कई बार कहता हूँ कि मेरे प्रेम से कोई बच नहीं सकता।

'राधास्वामी गुरु की कर सतसंगत, काल करम कर भंग री।'

राधास्वामी कौन है? राधास्वामी वो है जो प्रेममय है।

'गुरु वही जो शब्द सनेही, शब्द बिना और नहीं सेई।'

इसका मतलब यह नहीं कि आप कानों में अँगुली देकर बैठे रहो। हम तो इसलिये बैठते हैं जिससे आपके सब काम ठीक होते रहें। 'गुरु वही जो शब्द सनेही' गुरु वह है जो शब्द में सना हुआ है। शब्द क्या है? पाँचों तत्त्वों में शब्द आकाश है। आकाश में सब समाविष्ट हो जाते हैं। ऐसा गुरु जो एकत्व में रहता है वह सबको अपने अन्दर समाविष्ट कर देता है। जिसका प्रेम व्यापक है वही शब्दसनेही है। दूसरी बात यह है कि जो प्रेम में ओत-प्रोत है, उसके शब्द, उसकी वाणी, उसके सत्संग सुनने से कभी न कभी आप कहोगे कि हमें भी थोड़ी देर के लिए अनुभव हो गया। उसकी वाणी के अन्दर ओज होगा। सद्गुरु की वाणी तुमको ऊपर उठायेगी। अगर सत्संग में वाणी से तुम नीचे गिरते हो, तो वह सत्संग किसी मतलब का नहीं।

'राधास्वामी गुरु की कर सतसंगत'

मैंने आपको कल बताया था कि राधास्वामी गुरु को संगत करो।

कोटि-२ करूँ वन्दना अरब खरब दण्डौत।
राधास्वामी मिल गये खुला भक्ति का स्रोत ॥

वन्दना का मतलब है—अपने अहंकार को मिटा देना। अहंकार हटते ही आप राधास्वामी के नज़दीक आ जायेंगे। राधास्वामी से मिलकर एक हो जायेंगे। भक्ति का स्रोत खुल जायेगा।

'राधास्वामी गुरु की कर सतसंगत,
काल करम कर भंग री ॥'

कितनी आसान बात है कि राधास्वामी गुरु की संगत करो। संगत का मतलब यह नहीं कि तुम गुरु को न खाना खाने दो, न आराम करने दो। संगत का मतलब है कि हर समय गुरु को अपने पास समझो और गुरु के ध्यान में मस्त रहो। मैं हमेशा तुम्हारे पास हूँ। मेरी प्रेम की धार से कोई बच नहीं सकता। राधास्वामी सद्गुरु की संगत करने से तुम्हारी संगत भी वैसी ही हो जायेगी और इस जीवन के अन्दर तुम्हारे लोक और परलोक दोनों बन जायेंगे। यह सत्संग की महिमा है, जिसे आज मैंने आपको बताया। आज का सत्संग मैं यहीं पर समाप्त करता हूँ।

सबको राधास्वामी !

पत्र द्वारा सत्संग

(पत्र परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज का श्री विश्वामित्र मराज के नाम)।

तिथि 14-1-92

मेरे परमतत्वांश परम प्रिय विश्वामित्र

राधास्वामी परम दयाल जी सहाय!

आपका बहुत ही प्यारा पराभक्तिमय सारगर्भित पत्र मिला। आपने जो भाव उसमें प्रकट किये हैं वे शत-प्रतिशत सराहनीय हैं। दाता दयाल जी व परम दयाल जी महाराज ने निज अनुभवों के आधार पर तथा सनातन धर्म और सन्तमत के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर यह प्रमाणित कर दिया है कि राधास्वामी मत सनातन धर्म से भिन्न नहीं हैं। वह तो उसकी पराकाष्ठा है। दाता दयाल जी महाराज ने अपने अनेक शब्दों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि राधास्वामी मत सब मतों का टीका इसलिये है कि उसमें सनातन धर्म की सच्चाई का सर्वोच्च शिखर मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। अगर हम राधास्वामी मत को परासनातन धर्म कह दें तो इसमें कोई भूल नहीं होगी। दाता दयाल लिखते हैं :—

राधास्वामी ने भेद बताया;
सुरत शब्द मत गाया।
सुरत शब्द मत सबका टीका;
सुरत में शब्द को पाया॥

यहाँ पर सुरत शब्द मत जिसका उल्लेख तेजोविन्दु उपनिषद् व नादविन्दु उपनिषद् में किया गया है, कोई नई

वस्तु नहीं है, किन्तु उसका जीवन में उतारने का तरीका बहुत सरल रूप मे दिया गया है। शब्द-ब्रह्म और परमधाम का उल्लेख भगवद्गीता में भी आता है। किन्तु शब्द-ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म का अनुभव करने के लिए और ज्ञानी भक्त बनने के लिए केवल किताबी ज्ञान पर्याप्त नहीं है। यह उच्चतम अनुभव जीवित सद्गुरु एवं मनुष्यरूप में आये हुए परमतत्त्व के मार्गदर्शन से ही हो सकता है।

ब्रह्म का वह स्तर जो हर प्रकार के रंग-रूप से, हर प्रकार के मापदण्ड से और सत् चित् आनन्द की विमाओं से परे केवल जात-ए-पाक है इसका व्यावहारिक ज्ञान करोड़ों में से किसी एक व्यक्ति को हो सकता है। और वह ज्ञानी भी तभी निजस्वरूप को जान सकता है जब उसका ज्ञान व्यापक प्रेम में बदल जाये। इसलिये भगवान् कृष्ण ने स्वयं कहा है कि निर्गुण की भक्ति करने वाले व्यक्ति का रास्ता बहुत कठिन है। आगे चलकर उन्होंने निर्णय दे दिया कि निराकार की भक्ति करने वाले साधक के मुकाबले में साकार की भक्ति करने वाला साधक श्रेष्ठ है। साकार भक्ति केवल व्यक्त, मूर्त्त और ठोस व्यक्तित्व की हो सकती है। ऐसा इष्ट हमेशा मूर्त्त, दर्श-पर्श प्रेम-प्रतीत के द्वारा ही जाना जा सकता है और अनुभूत किया जा सकता है। इसलिये मूर्तिपूजा और गुरु की मूर्तिपूजा का साधन सनातन धर्म में और सन्तमत में स्वीकृत किया गया है। इसी दृष्टि को नीचे दिये गये शब्द में दाता दयाल जी ने बतलाया है :—

'दे खोल दृष्टि तुझे पहचाने ;
दरश परस करके तुझको माने।'

साकार गुरु को प्यार करते-२ और उसका नाम जपते-जपते वह जीवन्मुक्ति की अवस्था आ जाती है जिसमें

"मैं-तू" समाप्त हो जाती है और गुरु ही गुरु जड़ व चेतन में अनुभूत होने लगता है और साकार भक्त ज्ञानी भक्त हो जाता है। उसका ज्ञान केवल वाचक नहीं होता बल्कि व्यावहारिक होता है। राधास्वामी मत में मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं, बल्कि उसको सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है। सनातन धर्म में पत्थर की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा की जाती है और उसको राम, कृष्ण या विष्णु का वास्तविक रूप मानकर उसकी पूजा की जाती है, उससे प्रेम किया जाता है और उसे परमतत्त्व माना जाता है। ऐसा करने से भी कई भक्त पराभक्ति की अवस्था पर पहुँच चुके। नामदेव जी ने नहीं सिर्फ निर्जीव मूर्ति को दूध पिलाया बल्कि आगे चलकर वह परमभक्त हो गये। जीवित गुरु का व्यक्तित्व भी एवं उसका शारीरिक रूप भी मूर्ति ही है। लेकिन उसकी शारीरिक मूर्ति को देश-काल में सीमित नहीं मानना चाहिए। इसलिये बार-बार सन्तमत में इस बात पर ग़ौर किया गया है कि गुरु को रूप के देश-काल में सीमित नहीं मानना चाहिए। इसी दृष्टि से सन्तमत में 'ध्यानमूलं गुरुमूर्ति': अर्थात् ध्यान का आधार गुरु की मूर्ति माना गया है।

दूसरी बात यह है कि जिस गुरु ने अपने सत्संगी को यह नहीं बताया कि गुरु की शारीरिक मूर्ति और उसकी सूक्ष्म मनोमय अभिव्यक्ति उस परमतत्त्व का प्रतीक है जो शरीर, मन और आत्मा से परे है और जिसने सत्संगियों को जानबूझ कर भुलावे में रखा है, ऐसे गुरु की मूर्ति को पूजने वाले सत्संगी परमधाम नहीं जा सकते। उन्हें अवश्य फिर जन्म लेना पड़ता है। जिस गुरु ने उनको भुलावे में रखा है उसे भी जन्म लेना पड़ता है क्योंकि वह भी दूसरों को धोखा देने के कारण परमधाम नहीं जा सकते। ऐसे गुरु की मूर्ति की पूजा करने से दुनियावी इच्छाएँ भले पूरी हो

जाएँ किन्तु परमधाम की प्राप्ति नहीं हो सकती। लेकिन जिस गुरु ने जीते-जी यह सच्चाई बता दी और कह दिया कि उसका असली स्वरूप शरीर, मन, आत्मा से परे है, ऐसे गुरु की मूर्ति की पूजा करने से भी साधक अवश्य परमधाम को जा सकता है। यदि हम परम दयाल जी महाराज के सत्संगों को ग़ौर से सुनें तो हमें पूरा विश्वास हो जायेगा कि सच्चे फकीर और वीतराग पुरुष की मूर्ति का ध्यान भी हमें उसी परम पद पर ले जायेगा जिस पर वह इसलिये पहुँचा है कि उसने जीते-जी अपने सत्संगियों को भुलावे में नहीं रखा।

परम दयाल जी ने एक स्थान पर कहा है "दूसरे गुरुओं ने तुम्हें धोखा दिया है। उन्होंने सच्चाई बयान नहीं की। मैं यह सच्चाई कह कर उन गुरुओं का तर्पण करने आया हूँ। मैं तो सच बोल चला।" उनके इन शब्दों से स्पष्ट है कि वह तो परमधाम से नीचे आयेंगे नहीं। इसलिये उनकी मूर्ति पर ध्यान लगाने वाला साधक वहीं जायेगा जहाँ वे खुद मौजूद हैं। इस दृष्टि से मैं आपके साथ सहमत हूँ।

आपका पत्र मानव मन्दिर में छपवा दिया जायेगा ताकि सत्संगियों को प्रेरणा मिले। इस सम्बन्ध में जो भी पत्र आ रहे हैं, उन्हें छपवाया जायेगा।

शेष आपका पत्र आने पर।

मेरी तरफ से आपको, श्रीमती शान्ति को, तीनों बच्चों को और पं० मोती लाल जी को तथा सभी सत्संगियों तथा उनके परिवारों को हार्दिक आशीर्वाद, नये वर्ष की शुभ-कामनाएँ और राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

पञ्च श्री विश्वामित्र महाराज, ट्रिनीडाड, का परम-सन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज को।

तिथि 30-12-91

मेरे प्यारे मालिक-स्वरूप मानव दयाल जी महाराज,

राधास्वामी!

उम्मीद है कि आप राज़ी-खुशी इंडिया पहुँच गये होंगे। कुछ दिनों से विचार था कि खत लिखूँ। एक्सप्रेस के कारण कारोबार में मसरूफ रहा। आज "मानव मन्दिर" पढ़ने पर ख्याल आया—अभी खत लिख दूँ। आप ने तो खूब अच्छा खासा सानफ़रनांडो का नक्शा खींच दिया है। वक्त-वक्त की बात है। कभी मैं अपनी बुराई सुन-सुन कर दिल ही दिल में खुश हुआ करता था। अब अपनी बड़ाई सुनकर खुश होता हूँ। चलो फैसला हो गया। खुशी तब भी थी और खुशी अब भी है। लिखना नहीं चाहता था लेकिन मजबूर हूँ। लिखे बगैर रह भी नहीं सकता। इसमें मेरी कोई गरज़ नहीं। एक श्री बी. बी. भटनागर साहिब ने आपको पत्र लिखा जिसको मैंने अभी-अभी पढ़ा। शायद इसीलिये मैंने आपको खत लिखना शुरू कर दिया। उन्होंने मूर्तिपूजा खासकर परम दयाल जी महाराज की आरती उतारने पर लिखा और उन्होंने यह भी लिखा कि स्वयं परम दयाल जी ने अपने गुरु महाराज दाता दयाल जी की आरती कभी नहीं उतारी क्योंकि यह उन्होंने मानवता मन्दिर में अपनी आँखों से कभी नहीं देखा।

मेरे अपने विचार में सज्जन पुरुष भटनागर साहिब ने महाराज जी का सत्संग नहीं किया, वर्ना ऐसे सवालात

न करते। मैं खुद आरती का मतलब नहीं समझता। न ही मूर्तिपूजा में गड़ा रहा। लेकिन इतना कहने का हक रखता हूँ कि आदत होना पहिला कदम और आखिरी कदम भी आदत से ही मुकम्मिल होता है। दूसरा ध्यान मूर्तिपूजा नहीं तो और क्या है? ध्यान बाहर लगा या अभ्यास में अन्दर लगा। क्या फर्क है? क्या बाहरमुखी से अन्तर्मुखी जाना मुफीद है? द्रोणाचार्य का एक शिष्य जिसका नाम मैं भूल गया (एकलव्य!) उसने सिर्फ द्रोणाचार्य की मूर्ति से ही तीरन्दाजी सीखी और अर्जुन से कहीं बढ़कर आगे निकल गया। मीरा बाई ने जो कुछ पाया कृष्ण जी की मूर्ति से पाया। और मेरे अपने विचार से जिस कदर विश्वास मीरा बाई को हुआ, वह विश्वास बड़े से बड़े सन्त परमसन्त ने नहीं पाया। और मैंने अपने गुरु महाराज फकीर बाबा को जब-जब देखा, उनको अपने गुरु महाराज दाता दयाल जी की मूर्ति में लीन देखा। मानव दयाल जी यह सब मन माने की बातें हैं। मानो तो भगवान् नहीं तो पत्थर। मैं नहीं कहता क्या ठीक है—क्या गलत है। दर-असल सत्संग की महिमा है। जब इन्सान सत् को ग्रहण कर पाता है बाकी जो रह जाता है वह खेल है। मैं यह खत कोई खण्डन या मण्डन करने के लिए नहीं लिख रहा हूँ। दिल में ख्याल आ गया—अज्ञानी जीव अपने ही मन की तरंगों में बुरी तरह जकड़ा हुआ है। क्या मैं खुद बरी हूँ? ऐन मौके पर आकर गिरता रहता हूँ। लेकिन मेरे मालिक की मुझ पर बहुत दया है। उनके शब्द मेरा सहारा बने रहते हैं। मैं बहुत बार सोचता हूँ—जो उन्होंने सन्तों की तालीम में तबदीली की, क्या वह काम कर रही है? या जनता वही पुरानी लकीर बुरी तरह पीट रही है?

सदियों के पुराने संस्कार हमारे दिमाग़ों पर पड़े हुए

हैं, वह आसानी से जाते नहीं। मूर्तिपूजा का खण्डन ईसाइयों और मुसलमानों ने हिन्दु धर्म को नीचा उतारने के लिए किया और वे खुद क्या कर रहे हैं? जब मैं छोटा था, आर्य समाज का बहुत जोरशोर सुना रहा था। अब आर्य समाज कहाँ गया? सन्तों का आगाज़ जब हिन्दु और मुसलमानों में बहुत लड़ाई-झगड़े और फसाद हुआ करते थे, तब हुआ। वही सिख लोग जो सन्तों की बानियों के हामी होते थे और ब्राह्मणों को मुसलमानों से बचाने के लिए जान पर खेला करते थे, अब वे क्या कर रहे हैं?

हरएक इन्सान अपने मन के जाल में बुरी तरह से फँसा हुआ है। उनको मालूम नहीं कि वह क्या कर रहे हैं? इसलिये सत्संग की महिमा है। वह भी कोई सत्संग कराने वाला हो और कोई सुनने वाला हो। इसलिये बजाय कि हम आपस में वाद-विवाद करें, हमको अपनी-अपनी मन की गढ़त करनी चाहिए। वह गढ़त क्या है? ऐ इन्सान! तू किसी के दोष मत देख। हमेशा गुण को ग्रहण कर।

I am looking forward receiving a set of Faqir Baba Ji's tapes and books. Thanks.

मेरी तरफ से माता जी को और मन्दिर वालों को राधास्वामी। आपको, माता जी और सब मन्दिर वालों को।

A very Happy New Year 1992.

आपका
विश्वामित्र

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में यह बताया गया था कि सतनाम एवं मालिक को मिलने की विधि तथा उस विधि के द्वारा, उस परम अवस्था को पाने के लिए, जिसमें साधक जगत् के द्वन्द्वों से ऊपर उठकर, राधास्वामी अवस्था में पहुँच जाता है, ऐसे गुरु की आवश्यकता है, जो स्वयं मालिक से मिल चुका हो। ऐसे गुरु का विशेष लक्षण यह होता है कि वह स्वयं 'शब्द सनेही' हो और जो शब्द के बिना किसी भी अन्य उद्देश्य को मुख्य न समझे। इस सन्दर्भ में नीचे दिये गये शब्द को प्रस्तुत किया गया है :—

'गुरु वही जो शब्द सनेही।
बिना शब्द और नहीं सेही ॥'

गुरु का 'शब्द सनेही' होने का अर्थ एक तो यह है कि वह स्वयं शब्द की भाँति एकत्व और व्यापकता का अनुभव करता हो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश में, आकाश-तत्त्व अत्यन्त व्यापक है। उसमें सभी अन्य तत्त्व समाविष्ट हैं और वह पूर्णतया निरपेक्ष, सर्वव्यापक तत्त्व है, जो एक

होते हुए अन्य सभी तत्त्वों एवं अनेकत्व को एकत्व में समाविष्ट किये हुए है। दूसरे शब्दों में शब्द सनेही गुरु वह है जो सभी प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठा हुआ है और समदृष्टि रखता है। ऐसे सदगुरु की वाणी या धारा इतनी प्रभावशाली होती है कि उसको सुनने वाला उसमें निमग्न हो जाता है और स्वयं अपने अहंकार को भूलकर मानो परमतत्त्व को स्पर्श कर लेता है। यही नामदान की अन्तिम अवस्था है। जैसा कि पहिले बताया गया है कि नामदान की पहिली अवस्था दीक्षा है और दूसरी अवस्था अनुभव है। यह अनुभव निःसन्देह विभिन्न स्तरों से गुज़रता हुआ उपरोक्त उच्चतम अवस्था पर पहुँचा देता है, जो कि नामदान की अन्तिम अवस्था है।

सन्तमत ने उपनिषदों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन को सदगुरु सत्संत और सतनाम का रूप दे दिया। उपनिषद्-काल में तो शिष्य कई वर्षों तक गुरु के उपदेश पर अमल करते रहते थे। उसके पश्चात् उन्हें आत्मानुभूति प्राप्त होती रहती थी।

एक शिष्य गुरु के पास गया और उसने आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। ऋषि ने उसे आध्यात्मिकता की शैली में पहिले ब्रह्म एवं परमतत्त्व की व्यापकता की ओर उसका ध्यान दिलाया और बाद में उसे ब्रह्म के विश्वातीत पक्ष का निरूपण करते हुए समझा दिया कि वह सभी मापदण्डों से परे है, नेति-२ है और अन्त में उसी शिष्य को कहा, "वह तुम ही हो।" इस उपदेश देने के बाद उसने शिष्य को कहा, "जाओ। अब तुम बारह वर्ष के लिए अनुभव करो और उसके पश्चात् मेरे पास आना।" वह शिष्य बारह वर्ष तक विचरता रहा और निदिध्यासन एवं आन्तरिक अभ्यास करता रहा। कालान्तर में वह अपने गुरु

के पास पहुँचा। जब गुरु ने पूछा कि उसको क्या अनुभव हुआ, तो शिष्य बोला, "मैं जंगलों में, पहाड़ों में, नगरों में घूमा और आन्तरिक अभ्यास भी करता रहा। मुझे हर स्थान पर, हर वस्तु में, हर व्यक्ति में, हर वातावरण में उसी ब्रह्म की उपस्थिति का अनुभव हुआ, जो एक है और एक होते हुए भी एक-अनेक के भाव से परे है, विशुद्ध है, विश्षातीत है और वह "मैं ही हूँ" इस प्रकार उसने करीब आधे घण्टे तक अपने अनुभव को व्यक्त किया। गुरु ने कहा, "बेटा ! अभी तुम्हें परमतत्त्व का पूरा ज्ञान नहीं हुआ। जाओ बारह वर्ष और अनुभव करके मेरे पास आओ।"

वह शिष्य बारह वर्ष और विचरने के पश्चात् और गहरा अनुभव करने के पश्चात् गुरु के पास पहुँचा। अपना अनुभव व्यक्त करते हुए वह सिर्फ पाँच मिनट के लिए बोला और कहने लगा, "गुरुदेव ! मैंने यूँ ही पहिली बार उस परमतत्त्व की व्याख्या विस्तारपूर्वक की। अब मुझे यह ज्ञान हो गया कि वह सर्वव्यापक, सर्वाधार हर वस्तु में आंशिक रूप से मौजूद होते हुए भी, उनसे न्यारा है। वही न्यारापन मुझे अनुभूत हो गया है। अब मैं आनन्द की अवस्था में हूँ।" गुरु ने कहा, "मेरे प्रिय शिष्य ! यद्यपि तुझे पहिले से कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त हुआ है, लेकिन अभी तक तू ज्ञाता-ज्ञैय के स्तर पर ही है। तुम्हारी 'मैं' तो समाप्त हो गई किन्तु 'तू' अभी तक भी मौजूद है। तुम्हें नाम एवं निदि-ध्यासन का, समदृष्टि का अनुभव तो हो गया है और तुम्हारा अहंकार भी नहीं रहा है, किन्तु फिर भी तुम्हें आगे बढ़ना है, इसलिये तुम बारह वर्ष और अनुभव करो और फिर मेरे पास आओ।" इस प्रकार वह शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए बारह वर्ष किसी एक कन्दरा (गुफा)

में बैठकर लगातार अभ्यास करता रहा। जब वह ऐसी अवस्था में पहुँचा, जहाँ पर न 'मैं' है न 'तू', न ज्ञाता है न ज्ञेय है, न कर्त्ता है न कर्म है, न द्रष्टा है न दृश्य है, न साधन है न साध्य है, न चेतना है न आनन्द है और न उसे अस्तित्व का आभास है, न ही यह आभास है कि वह कुछ नहीं है तब वह अपने गुरु के पास पहुँचा। दण्डवत् नमस्कार करके गुरु के सामने मौन होकर बैटा रहा। कुछ समय तक न गुरु बोला न शिष्य बोला, न कोई वार्त्तालाप हुआ न प्रश्न-उत्तर हुआ। गुरु शिष्य को देखता रहा, शिष्य गुरु को देखता रहा। अन्त में गुरु ने मुस्कराते हुए कहा, "अब तुम्हें आत्मज्ञान हो गया है।" 'उपशान्तोऽयम् आत्मा—आत्मा शान्त है। उसका अनुभव व्यक्त नहीं किया जा सकता।

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि सन्तमत ने ऐसा सरल मार्ग बताया कि जिसके द्वारा जिस अनुभव के लिए बीसियों वर्षों अभ्यास करना पड़ता था, वही अनुभव सहज में और थोड़े समय में सुरत-शब्द योग द्वारा प्राप्त हो सकता है। उन्होंने ऐसी भक्ति का निरूपण किया, जिसे हरएक व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के प्राप्त कर सकता है। इसीलिये "सार वचन" पुस्तक में कहा गया है :—

भक्ति सुनाई सबसे न्यारी।
वेद कतेब न ताही विचारी॥

इसका अर्थ यह नहीं है कि शब्दयोग वेदों, उपनिषदों या योग की अन्य विधियों में मौजूद नहीं था। किन्तु शब्द को पकड़ कर इष्ट से पराप्रेम करते हुए सहज में आध्यात्मिकता की उच्चतम अवस्था पर पहुँचने का मार्ग स्पष्ट रूप से सरल भाषा में प्रस्तुत नहीं किया गया था। 'सार वचन' में भी यह नहीं कहा गया कि सतयुग, त्रेता और द्वापर युग में शब्दब्रह्म का ज्ञान नहीं था। शब्दब्रह्म,

परमधाम, परमपद, परमपुरुष और परात्पर ब्रह्म शब्दों की उपस्थिति यह प्रमाणित करती है। प्राचीन ऋषियों ने अवश्य आन्तरिक अभ्यास द्वारा परमपद को छुआ होगा, किन्तु यह मार्ग सरल रूप से और जनसाधारण के लिए सन्तों ने ही कलियुग में प्रस्तुत किया। इसलिये 'सार वचन' में निर्दिष्ट किया गया है :—

सतयुग त्रेता द्वापर बीता ।
काहू न जानी शब्द की रीता ॥
कलियुग में स्वामी दया विचारी।
परगट करके शब्द पुकारी ॥

इन चार पंक्तियों में यह प्रमाणित किया गया है कि शब्दब्रह्म की उपस्थिति और उसके द्वारा परमतत्त्व की अनुभूति के साधन केवल कलियुग में ही अचानक प्रकट नहीं हुए, बल्कि वे धीरे-धीरे विकसित होते हुए कलियुग में शब्दयोग की उस पराकाष्ठा पर पहुँच गये, जो सहज में और तुरन्त जीवों को भव के पार जाने में सहायक सिद्ध होते हैं, क्योंकि एक तो उन दुःखी जीवों की संख्या बहुत बढ़ गई है, जिन्हें भव से पार जाने के लिए सरलतम मार्ग की आवश्यकता है और दूसरे परमतत्त्वाधार परमपुरुष ने हर युग में समय की परिस्थितियों के अनुसार मार्गदर्शन किया है। ऊपर दी गई चार पंक्तियों में यह स्पष्ट है कि पहिले तीन युगों में शब्दयोग की विधि को सहज मार्ग के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया था। उन युगों में उस समय की परिस्थितियों के अनुसार ही प्रस्तुत किया गया। सतयुग में ध्यान, त्रेता युग में कर्मकाण्ड, यज्ञ और द्वापर युग में पूजा की आवश्यकता थी। इसलिये ही तो स्वामी जी महाराज ने कहा है कि पहिले तीन युगों में शब्दयोग की विधि या शब्दयोग की विधियों के रूप में प्रयुक्त न करने के कारण, लोगों को इसका पूर्ण ज्ञान नहीं

था। तीसरी और चौथी पंक्तियों में यह बताया गया है कि उसी परमतत्त्वाधार ने, जिसने सतयुग में ध्यान का विधि को प्रतिपादित किया, त्रेता युग में राम बनकर कर्म-काण्ड के और यज्ञों के विशेषज्ञों एवं ऋषियों को उन राक्षसों एवं दैत्यों से बचाने के लिए जो यज्ञ आदि में बाधक होते थे, धनुषबाण को धारण किया, उसीने ही द्वापर में श्री कृष्ण का अवतार लेकर पूजा की विधि को भक्ति में बदल कर और सभी कर्मों को एवं धर्मों को, परमपुरुष को समर्पित करके मार्गदर्शन किया। वही परमतत्त्व कलियुग मे सन्तों के रूप में प्रकट होकर शब्द-योग को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए प्रकट हुआ। कलियुग में 'स्वामी दया विचारी' का अर्थ यह नहीं है कि शिव दयाल जी स्वामी ने एक व्यक्ति के रूप में दया से शब्दयोग को सीधे-सादे शब्दों में और सरल ढंग से प्रकट किया। इसका अर्थ यह है कि जो परमतत्त्व, परमपुरुष हर युग में समय की आवश्यकता के अनुसार जीवों का मार्ग-दर्शन करता रहा, उसी स्वामी ने कलियुग की परिस्थितियों के अनुकूल कबीर साहिब से लेकर समकालीन सन्तों के समय तक इस युग को सभी जीवों के कल्याण के लिए प्रकट किया।

इस मासिक सन्देश में सन्तमत की त्रिवेणी सद्गुरु सत्संग और सतनाम की चर्चा यहाँ तक पर्याप्त होगी। इससे आगे की चर्चा अगले मासिक सन्देश में जारी रखी जायेगी।

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको अक्टूबर महीने तक के सत्संग-दौरे की सूचना दी थी। जहाँ तक नवम्बर-दिसम्बर के दौरे का सम्बन्ध है, मुख्यत: मेरा दो बार आबूधाबी का दौरा परम दयाल जी महाराज की जन्म-संवत्सरी और अमेरिका तथा ट्रिनीडाड की घटनाएँ

यहाँ पर लिखने के योग्य हैं। आबूधाबी के सत्संगियों के आग्रह पर मुझे 4 नवम्बर से 8 नवम्बर तक सत्संग के लिए दिल्ली से वहाँ जाना पड़ा। किन्तु यह दौरा बहुत ही रोचक और प्रभावशाली रहा। 4 नवम्बर प्रातःकाल को जब मैं गल्फ एयर लाईन के द्वारा आबूधाबी पहुँचा, तो श्री प्रवीण गुप्ता हवाई जहाज में ही मेरा स्वागत करने के लिए आ गये। जब हम पासपोर्ट आदि के लिए टर्मिनल में पहुँचे ही थे तो श्री राजीव सिन्हा, रवि पंडित और 4, 5 अन्य सत्संगी भी पहुँच गये थे। कुछ ही मिनटों में हम कस्टम आदि से निवृत्त होकर आबूधाबी शहर के लिए रवाना हो गये। मैंने आपको यह पहिले ही बताया हुआ है कि आबूधाबी का हवाई अड्डा बहुत विशाल है। वहाँ की सड़कें विशेषकर राजमार्ग, जो हवाई अड्डे की सड़क से जुड़ा हुआ है और शारजा तथा दुबई से आबूधाबी जाता है, बहुत ही विशाल, सुन्दर और समतल है। इसलिये हम बड़े आराम से और आधे घण्टे के अन्दर श्री रवि पंडित के घर पर पहुँच गये। उनका निवासस्थान एक गोलाकार चौराहे पर है जहाँ दूर से समुद्र भी दिखाई देता है। उसको और सड़कों को तथा गाड़ियों को समतल, साफ और सुन्दर सड़कों पर तेजी से चलते हुए देखने पर ऐसा लगता है कि किसी विकसित यूरोपीय अथवा अमेरिकन देश के नगर में पहुँच गये हों। जब मैं रवि पंडित के घर जाता हूँ, तो उनके तीसरी मंजिल पर उनके सुन्दर बरामदे से बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। कारें तथा अन्य गाड़ियाँ सभी नई दिखाई देती हैं। इस नगर में हर प्रकार की मोटरकारें, वैन्स् और बड़े-२ वाहन देखने में आते हैं। यह वाहन अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, अन्य यूरोपीय देशों और जापान से आबूधाबी में आयात किये जाते हैं। अधिकतर कारें और

वाहन जापान में निर्मित होती हैं। हमारे भारत में भी अब जापान-निर्मित गाड़ियाँ बहुतायत में देखने में आती हैं। इस छोटे से देश जापान ने मोटर-गाड़ियों, मशीनों तथा बिजली के सभी यन्त्रों एवं टेलीविज़न आदि के निर्माण में विश्व के सभी औद्योगिक देशों को मात कर दिया है। जापान के नागरिकों में राष्ट्रीयता और देशप्रेम कूट-२ कर भरा हुआ है। पिछले महायुद्ध में जापान बिलकुल तबाह हो गया था और इसका व्यापार तथा उद्योग नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। किन्तु कुछ ही वर्षों में जापानियों ने अत्यन्त परिश्रम और उत्साह से अपने व्यापार और उद्योग को अमेरिका से तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान का प्रयोग करके अपने उद्योग को एक अद्वितीय बढ़ावा दिया। जापान की रहने की शैली भी पश्चिमीय है। उनकी तकनीक, उनकी संस्थाएँ भी पश्चिमीय ढंग से प्रचलित हैं, किन्तु उनका हृदय जापानी है। उनका रहन-सहन, खाना-पीना आदि पश्चिमी होते हुए भी जापानी संस्कृति और विशेषकर बौद्ध धर्म तथा शिण्टो धर्म ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। मैं यहाँ पर आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि बौद्ध धर्म के बहुत से विकसित समुदाय, जिनमें ज़ेन बौद्ध सम्प्रदाय उल्लेखनीय है और जापान में बहुत ही सर्वप्रिय है। शिण्टो धर्म भी हमारे सनातन धर्म से मिलता-जुलता है।

ज़ेन बौद्ध सम्प्रदाय तो विश्वभर में और विशेषकर अमेरिका में बहुत ही प्रचलित है और सर्वप्रिय है। 1962 में जब मैं पहिली बार अतिथि प्रोफेसर की हैसियत से अमेरिका गया था और सितम्बर से जनवरी 1963 के पहिले सप्ताह तक कैलीफोर्निया के क्लेयरमौण्ट में स्थित विश्व-विद्यालय में रहा था, उस समय मैंने पहिली बार यह अनुभूत किया कि भारतीय संस्कृति और योगसाधना प्रत्यक्ष

रूप में चीन, जापान, कोरिया आदि के बौद्ध सम्प्रदायों में और परोक्ष रूप से अमेरिका में बहुत प्रभावशाली है। मैंने आपको बताया था कि कैलीफोर्निया के लौसैन्जलस नगर में अनेक सम्प्रदायों के बौद्ध मन्दिर हैं और हजारों अमेरिकनों ने बौद्ध धर्म को और विशेषकर जेन बौद्ध मत को अपनाया हुआ है। मैं आगे चलकर किसी मासिक सन्देश में आपको बताऊंगा कि यह बौद्ध मत का विश्वप्रिय सम्प्रदाय किस प्रकार भारत से तिब्बत, तिब्बत से चीन और चीन से अमेरिका तथा यूरोप पहुँचा। मैंने प्रसंगवश आपको यह ऐतिहासिक घटना बताई है।

मेरे प्यारे अंशो ! आबूधाबी में मेरे चार दिन अत्यन्त व्यस्त रहे। 4 नवम्बर को ही एक सार्वजनिक सत्संग में हिन्दू और अन्य धर्म के अनुयायियों, मानवता धर्म के सत्संगियों तथा समर्थकों ने बड़े उत्साह से भाग लिया। यह सत्संग अंग्रेजी भाषा में हुआ, लेकिन सभी स्त्री-पुरुषों ने बड़े ध्यान से मेरी वाणी को सुना और मस्ती का अनुभव किया। सत्संग के पश्चात् कुछ रोचक प्रश्नोत्तर हुए, जिनसे शंका-समाधान हुआ और अन्त में 20 मिनट तक सभी ने सुरत-शब्द योग की समाधि लगाई। इस बार जहाँ-२ पर आबू-धाबी, दुबई और शारजा में सत्संग हुए, हर बार सत्संग के अन्त में समाधि लगाई गई।

आबूधाबी में एक स्थान पर दीवाली के उपलक्ष्य में पहिले से ही कीर्तन, भजन और पूजा का आयोजन था। इसमें सत्संगियों ने काफी संख्या में भाग लिया और सुरत-शब्द योग के सत्संग को बड़े ध्यानपूर्वक सुना। अन्त में समाधि के बाद सभी ने यही इच्छा प्रकट की कि जब भी मैं आबूधाबी जाऊँ, इन सत्संगियों को अवश्य समय दूं। इसी प्रकार के सनातन धर्म के दुबई और शारजा के केन्द्रों में

मेरा सत्संग आयोजित था। शारजा केन्द्र में भाग लेने वाले व्यक्ति अत्यन्त उत्साही थे। इन 4 दिनों के अन्दर स्वतः ही आबूधाबी, दुबई और शारजा राज्यों में मानवता धर्म के केन्द्र बन गये हैं। अब वहाँ पर विशेषकर आबूधाबी में हमारे सत्संगी महीने में दो बार सत्संग किया करते हैं।

मैं 9 नवम्बर को आबूधाबी से बम्बई पहुँच गया और एक रात बम्बई ठहरने के पश्चात् 10 नवम्बर प्रातःकाल देहली पहुँचकर 11 नवम्बर को होशियारपुर आ गया। परम दयाल जी महाराज के जन्मोत्सव के सम्बन्ध में 12 नवम्बर से ही तैयारियाँ शुरू हो गई थीं, क्योंकि 17 सायं और 18 प्रातःकाल यह वार्षिक सत्सग आयोजित थे। इस बार इस अवसर पर भीड़ बहुत ज्यादा थी और सैकड़ों सत्संगी दूर-२ से परम दयाल जी के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में सत्संग सुनने के लिए मानवता मन्दिर पहुँच गये थे।

17 नवम्बर प्रातःकाल और सायंकाल दोनों सत्संगों में शामियाना पूरी तरह से भरा हुआ था। 9 से 12 बजे तक सत्संग चलता रहा, जिसमें आचार्य शब्दानन्द ने भी भाग लिया। सत्संग के दौरान में सत्संगी अत्यन्त ध्यानपूर्वक और मुग्ध होकर सत्संग सुनते रहे। मैंने परम दयाल जी महाराज के अमेरिका के संस्मरण सुनाये, जिनको सुनकर बहुत से सत्संगी अश्रुपात करने लगे। मुझे ऐसा महसूस हुआ, जैसे परम दयाल जी महाराज साक्षात् मेरे पास बैठे हुए थे। इस सत्संग में भक्तिभाव बहुत उमड़ा। मैंने सत्संगियों को बताया कि भावना के बिना शान्ति नहीं होती और शान्ति के बिना सुख नहीं होता। किन्तु यह भावना सच्ची, दृढ़ और श्रद्धायुक्त होनी चाहिए। इसमें भावना केवल संयोगमात्र नहीं होती, बल्कि उसमें गहरी आस्था और श्रद्धा होती है। ऐसे अनुभव में अश्रुपात होना

कमजोरी नहीं है बल्कि अगाध प्रेम का प्रतीक है। वास्तव में, सच्चे सुख-दुःख से परे होते हैं। वह किसी कमी के कारण नहीं रोते। उनका रोना मालिक के विरह का रोना होता है और सत्संगियों के प्रति करुणा का रोना होता है, क्योंकि वे महसूस करते है कि सत्संगी अज्ञानवश यह नहीं जानते कि वे वास्तव में परमपुरुष का अंश और स्वरूप हैं। इसी भावना की उपस्थिति को मानवता कहा जाता है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को इस सम्बन्ध में उद्बोधन देते हुए कहा है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

अर्थात् जो युक्त नहीं है एवं परमतत्त्व से मिला हुआ नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती, न ही उसकी भावना होती है। जिसमें (आध्यात्मिक) भावना नहीं है, उसमें मानसिक शान्ति नहीं होती और अशान्त व्यक्ति को सुख कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसे भावों से और अनुभवों से युक्त 17 नवम्बर के दोनों सत्संग सत्संगियों के लिए आत्मिक भोजन बन गये और वे सभी आनन्दित हुए। 18 नवम्बर प्रातःकाल का सत्संग आशीर्वाद सत्संग था और संक्षिप्त था। उसी दिन भण्डारा भी था। प्रीतिभोज के बाद हम करीब साढ़े ग्यारह बजे चण्डीगढ़ के लिए रवाना हो गये और करीब डेढ़ बजे दोपहर हम चण्डीगढ़ में स्वर्गीय श्री राम कृष्ण डोगरा के घर पर पहुँच गये। वहाँ पर बहुत बड़े शामियाने में सत्संग आयोजित था। सत्संगियों की संख्या बहुत अधिक थी। क्योंकि स्थानीय सत्संगियों के अलावा अम्बाला और लालरू, मुल्लांपुर तथा निकटवर्ती स्थानों के सत्संगी भी वहाँ पहुँच गये थे। सत्संग बहुत प्रभावशाली रहा। हम ठीक 4 बजे देहली के लिए रवाना हो गये। 19 नवम्बर को सायंकाल सलवान पब्लिक स्कूल में परम

दयाल जी महाराज के जन्मोत्सव के सिलसिले में सायंकाल 3 बजे सार्वजनिक सत्संग हुआ। इस सत्संग में मेरे अतिरिक्त आचार्य श्री के० पी० वर्मा, आचार्य शब्दानन्द जी ने भी सक्रिय भाग लिया। देहली में एक दिन विश्राम करने के बाद 21 नवम्बर प्रातःकाल मैं एयर इंण्डया वायुयान के द्वारा रवाना होकर उसी दिन सायंकाल करीब 5 बजे न्यूयार्क पहुँच गया। यहाँ पर श्री बलविन्दर सिंह मुझे हवाई अड्डे पर अपने घर ले जाने के लिए आये। उस रात मैंने उनके निवासस्थान पर न्यूजर्सी में विश्राम किया और दूसरे दिन प्रातः 10 बजे कैनेडी हवाई अड्डे से रवाना होकर 11 बजे बोस्टन पहुँच गया। यहाँ पर उसी दिन सायंकाल नार्थ ईस्टर्न विश्वविद्यालय में मेरा सत्संग आयोजित हुआ जो विशेषकर भारतीय छात्रों के लिए और बुद्धिजीवियों के लिए उपयोगी था। रात्रि को हम श्री बी० बी० भटनागर के निवासस्थान पर नाशुआ पहुँच गये। यहाँ पर 23 नवम्बर को मेरा सत्संग विश्वहिन्दु परिषद् के तत्त्वावधान में नाशुआ से करीब 30 मील दूर श्री शर्मा जी के मकान पर आयोजित था। इस सत्संग में बहुत से भारतीय बुद्धिजीवी डाक्टर, इञ्जीनियर, प्रोफेसर आदि सम्मिलित हुए और इस बार युवा बच्चों ने भी बड़े उत्साह से सत्संग सुना। मुझे नाशुआ में 28 नवम्बर तक रहना था किन्तु इस बीच में एक दिन के लिए मुझे वाशिंगटन डी. सी. जाना पड़ा, क्योंकि वहाँ से मुझे ट्रिनाडाड जाने के लिए वीज़ा प्राप्त करना था। यह एक चामत्कारिक घटना थी कि मुझे वाशिंगटन डी. सी. में आधे घण्टे के अन्दर ही वीज़ा मिल गया। 28 प्रातःकाल मैं क्लीयरवाटर फ्लोरीडा के लिए बोस्टन से रवाना होकर उसी दिन करीब 2 बजे दोपहर टैम्पा हवाई अड्डे पर पहुँच गया, जहाँ श्रीमती रुथ बुश मौजूद थीं और वह मुझे अपने

निवासस्थान क्लीयर वाटर ले गई। इस मासिक सन्देश के लिए यहाँ तक दौरे की सूचना ही सम्भव है। मैं आपको इस महीने की सदभावना और आशीर्वाद प्रेषित करता हूँ और आपके सर्वतोमुखी कल्याण की कामना करता हूँ।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

शोक समाचार

सभी सत्संगी जन को यह सूचित करते हुए हमें अत्यन्त दुःख हो रहा है कि मानवता मन्दिर ट्रस्ट के उप-प्रधान पंडित नारायण दास जी डोगरा की श्रद्धेया माता लाजवन्ती देवी जी 23 फरवरी 1992 को प्रातःकाल 9 बजकर 25 मिनट पर परमधाम सिधार गईं। माता जी परमसन्त हजूर परम दयाल जी महाराज के समय से ही उत्तम कोटि की सत्संगिन थीं। परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज के प्रति भी माता जी की सहज भक्ति थी।

शोक-सन्तप्त परिवार की इस दुःखद बेला में सम्पूर्ण "मानव मन्दिर" परिवार सहानुभूति सहित सम्मिलित होते हुए परम पिता राधास्वामी दयाल से हार्दिक प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को 'निजधाम' में वासा दें एवं शोकाकुल परिवार को इस अपूरणीय क्षति को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

जनरल सेक्रेटरी

पावन पर्व वैशाखी महोत्सव

सभी सत्संगी और प्रेमी भाई-बहनों को सूचित करते हमें अति हर्ष हो रहा है कि प्रति वर्ष की तरह इस वर्ष भी पावन पर्व वैशाखी—महोत्सव मानवता मन्दिर, होशियारपुर (पंजाब) के पवित्र प्रांगण में दिनांक 12, 13 एवं 14 अप्रैल 1992 को बड़े समारोहपूर्वक मनाया जायेगा।

इस शुभ अवसर पर परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हज़ूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज के परा-आध्यात्मिक सत्संग वचनामृत के अलावा अन्य अनेक प्रदेशों से आये हुए आचार्यगण के अनुभवपूर्ण आध्यात्मिक प्रवचन सुनने का सुयोग प्राप्त होगा।

सभी सत्संगी और प्रेमी जन से सादर सप्रेम निवेदन है कि वैशाखी के इस पावन महोत्सव में सम्मिलित होकर परम सन्त सद्गुरु महाराज के पराआध्यात्मिक सत्संग वचनामृत तथा आचार्यगण के अनुभवपूर्ण प्रवचनों को सुनकर लाभ उठावें तथा अपना लौकिक और पारलौकिक जीवन सफल करें।

कार्य-क्रम

12-4-92	सत्संग	प्रातःकाल 9 से 12 बजे तक सायंकाल 4 से 6 बजे तक
13-4-92	सत्संग	प्रातःकाल 9 से 12 बजे तक
	रिपोर्ट	सायंकाल 4 से 6 बजे तक
14-4-92	आशीर्वाद सत्संग	प्रातः 9 से 12 बजे तक

विशेष :—बाहर से आये हुए सत्संगी जन के ठहरने तथा भोजन का प्रबन्ध मन्दिर के ट्रस्ट की ओर से रहेगा। कृपया बिस्तर साथ लावें।

जनरल सेक्रेटरी

आध्यात्मिक गीता सत्संग माला

एवं

साधना शिविर सिंहस्थ, १९९२ (उज्जैन)

उज्जैन (म० प्र०) में कुम्भ के पावन पर्व पर "वर्तमान विश्वव्यापी संकट काल में श्रीमद् भगवद्गीता का महत्त्व" विषय पर परमसन्त मानव दयाल जी महाराज डा. आई. सी. शर्मा, होशियारपुर (पंजाब), भूतपूर्व प्रोफेसर दर्शनशास्त्र, अमेरिका के द्वारा प्रवचनों की अमृतवर्षा होगी। अतः समस्त सत्संग-प्रेमियों से निवेदन है कि तपस्वी, त्यागी एवं अमली सन्त की अमृतवाणी सुनकर अपने जीवन को कृतार्थ करें।

विनीत :	आयोजक :
आचार्यद्वय मालव अंचल (म. प्र.)	अन्तर्राष्ट्रीय मानवता
सूर्यनारायण भट्ट	सिंहस्थ समिति, उज्जैन
रमा देवी गोयल	(म. प्र.)।

सत्संग का कार्यक्रम

सत्संग समय—दिनांक 28-4-92 से 4-5-92 तक

प्रातः 9 बजे से 11 बजे तक

सायं 6 बजे से 8 बजे तक

साधना शिविर—दिनांक 28-4-92 से 2-5-92 तक

समय—प्रातः 6 बजे से 7 बजे तक

स्थान—हरसिद्धि मन्दिर, जयसिंग पुरा मार्ग अखण्ड आश्रम के सामने, उज्जैन (म० प्र०)।

नोट :—बाहर से आने वाले सत्संगी भाइयों के ठहरने एवं भोजन की व्यवस्था सत्संग स्थल पर की गई है। कृपया अपना बिस्तर तथा अन्य आवश्यक सामान साथ लावें।

सम्पर्क सूत्र :—

(1) बंसी लाल द्वारका दास गर्ग
160 पटनी बाजार, उज्जैन,
फोन : 24338

(2) श्याम लाल गोयल
31, गीता कालोनी, बुधवारिया, उज्जैन
फोन : 23429

(3) महेन्द्र कुमार गर्ग,
9-आनन्द नगर,
चितावद रोड, इन्दौर (म० प्र०)
फोन : 465243

(4) बलराम सेवाराम जी चौहान
बस स्टैण्ड, तराना (तहसील) ज़िला उज्जैन (म. प्र.)
फोन : 60

(5) गनपत सिंग
बापू सिंग
जगदीश जी
ग्राम इटावा, तहसील तराना, ज़ि. उज्जैन (म. प्र.)

(6) बद्री लाल चौहान
ग्राम ढाबला हुर्दू (ज़िला उज्जैन)

(7) राम चन्द्र राठौर
ग्राम बड़ोद (ज़िला शाजापुर)

परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस
हज़ूर मानव दयाल डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज
का सत्संग

सालवान पब्लिक स्कूल, दिल्ली में

सभी सत्संगी और प्रेमी जन को सहर्ष सूचित किया जा रहा है कि सालवान पब्लिक स्कूल, पुराना राजेन्द्र नगर नई दिल्ली के सभा भवन में दिनांक 26-4-92 दिन रविवार को प्रात: 9 से 12 बजे तक परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हज़ूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का परा आध्यात्मिक सत्संग आयोजित है।

सत्संगी और प्रेमी जन सत्संग में सम्मिलित होकर, हज़ूर महाराज के वचनामृत का पान कर अपना लोक परलोक दोनों जीवन सफल करें।

जनरल सेक्रेटरी

आचार्य गण को निमंत्रण

मानव मन्दिर सभी आचार्य गण को एतद्द्वारा "आध्यात्मिक गीता सत्संग माला एवं साधना शिविर", सिंहस्थ, 1992 (उज्जैन) कुम्भ पर्व के शुभावसर पर होने वाले परमसन्त सद्गुरु हज़ूर मानव दयाल जी महाराजाधिराज के सत्संग वचनामृत तथा अन्य कार्यक्रमों में सम्मिलित होने तथा सक्रिय भाग लेने हेतु विशेष रूप से निमंत्रिण करता है। कृपया सभी केन्द्रों को इस कार्यक्रम की सूचना अवश्य प्रसारित कर दें।

जनरल सेक्रेटरी

मानवता की तालीम

(गतांक से आगे)

बड़े-बड़े अहंकारिये नानक गर्व गले

दूरदर्शिता और सच्ची समझ, विवेक या ज्ञान के साथ जो मनुष्य और जाति सच्चाई की दृष्टि से किसी वस्तु या अवस्था को पूर्णतया सोच-विचार के पश्चात् अपना विचार प्रकट करते हैं वह सच्चा अहंकार या स्वाभिमान कहलाता है, ऐसा अहंकार मनुष्य के जीवन का एक महान् अंग है।

देशवासियों को साधारण रूप से और नेताओं को विशेष रूप से सोचना चाहिए कि वे धार्मिक या राजनैतिक दृष्टिकोण से अपने आपको हिन्दु मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, कांग्रेसी, मुसलिमलीगी, सोशलिस्ट समझ कर किसी बात का दावा करते हैं। उस दावे के कारण देश में अशान्ति, अत्याचार रक्तपात, घृणा और द्वेष की आग भड़क रही है। क्या उनके इस दावे में सच्चाई है ?

ऐ हिन्दु, मुसलमान, सिक्खो, ईसाइयो, समाजवादियो ! क्या तुम्हारा किसी पक्ष के दावेदार होने का घमंड करना वास्तव में ठीक है ? सुनो ! एक हिन्दु मुसलमान हो सकता है, दूसरा हिन्दु सिक्ख हो जाता है, फिर सिक्ख भी अपना धर्म बदल लेता है। इसी प्रकार राजनैतिक समुदाय वाले भी अपना विचार बदल के अपना आदर्श बदल लेते हैं। घटना और अवस्था के वशीभूत एक धनवान् कंगाल हो जाता है और एक कंगाल करोड़पति हो सकता है एक स्वस्थ पुरुष

रोगी हो जाता है और एक रोगी स्वस्थ हो जाता है। सारांश यह है कि जितने हमारे तुम्हारे धार्मिक, सामाजिक राजनैतिक विचार और अवस्थाएँ हैं वे परिवर्तनशील हैं और हर समय बदलते रहते हैं। यदि मनुष्य इस भेद को समझ जाय तो इसका कोई काम या विचार दुःख और झगड़े का कारण न होगा, क्योंकि उसमें अहंकार न होगा। क्या अभी तक देश को पूरा अनुभव नहीं हुआ कि देश के अन्दर जितना कष्ट या दुःख व्यक्तिगत या सामूहिक ढंग से आ रहा है इसका कारण केवल हमारी भ्रान्ति-मूलक स्वाभिमानता या अहंकार का परिणाम है। निस्सन्देह जीवन नाम ही स्वयं अभिमान का है। परन्तु यह स्वाभिमान या अहंकार यदि सच्चाई पर आधारित हो तो जीवन सुख और शान्ति से व्यतीत होगा वर्ना नहीं।

मनुष्य-शारीरिक दृष्टिकोण से

प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको कुछ न कुछ समझने पर विवश है। कोई अपने आपको हिन्दु समझता है और कोई मुसलमान, सिक्ख, ईसाई इत्यादि। यह भेदभाव धर्म के आधार पर है। इसके अतिरिक्त देश में आर्थिक, सामाजिक और नैतिक क्षेत्रों में भी पार्टियाँ और धड़ेबंदियाँ होती हैं। इसके परिणाम स्वरूप कोई अपने आपको कांग्रेसी, मुसलिम-लीगी, सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट इत्यादि समझ रहा है और उन पार्टियों और धर्मों से गुटबद्ध हो रहा है। ये पार्टी या धर्म उसके गले का हार होकर उसे पक्षपाती और तंगदिल बनाये हुए हैं, जिसके कारण वह व्यक्ति सच्ची अवस्था से नितांत अनभिज्ञ है। इन अनभिज्ञता और अज्ञानता के कारण उससे ऐसे-२ कर्म बन पड़ते हैं कि जिससे एक सच्चे मनुष्य का मस्तिष्क लज्जा से झुक जाता है।

एक मनुष्य हिन्दु घराने में पैदा होकर हिन्दुओं के विचार और रीति-रिवाज के वशीभूत होकर हिन्दु धर्म की ओर झुकता है। ऐसे ही मुसलमान, सिक्ख, ईसाई इत्यादि। मेरा जभिप्राय यह है कि एक बच्चा जिस प्रकार के वातावरण में पलता है वह उन्हीं विचारों के ग्रहण करने के लिए विवश है। वही विचार और प्रभाव धीरे-२ परिपक्व होते हुए दृढ़ विश्वास के रूप में बदल जाते हैं। यदि वही व्यक्ति किसी दूसरे धर्म के वातावरण में होता तो उसका धर्म अवश्य उसके वातावरण के अनुसार होता।

इसलिये सिद्ध हुआ कि मनुष्य किसी धर्म के साथ जन्म से लगाव रखते हुए ससार में नहीं आता किन्तु जिस धर्म के विचार, प्रभाव उसको संगत में मिलते हैं वह उस धर्म का बाना पहन कर धार्मिक बन जाता है।

थोड़ा ध्यान से देखा जाय तो धर्म यथार्थ में सिवाय कुछ विचारों और रीति-रिवाज के कुछ नहीं है। जन्म के समय मनुष्य का बच्चा बिना किसी धर्म और पक्ष के पैदा होता है। उस बच्चे के विषय में कोई मत स्थिर नहीं किया जा सकता कि वह किस धर्म और पक्ष से सम्बन्ध रखेगा। उसके पालन-पोषण करने वाले व अन्य घटनाएँ या अवस्थाएँ जिस प्रकार के साँचे में ढालना चाहें ढाल सकते हैं।

(क्रमश:)

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

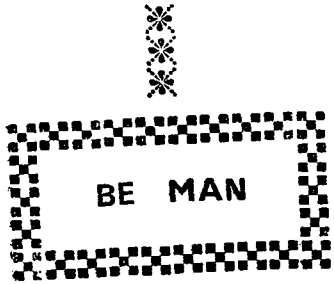

March. 10th, 1992
MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

REALITY OF RELIGION

by

Swami Ramatirtha

Question 1 : What is meant by "Religion" ? What is its purpose, necessity, utility or final goal ?

Answer : The term "Religion has not been used in the same sense by every one. Its connotation differs from age to age, country to country, even from man to man, according to man's evolution. However, Religion is that advanced stage of mind, in which peace, spiritual bliss, truth, equanimity, cheerfulness, large-heartedness, universal love, Knowledge of the Self and power become spontaneous and natural. Religion should help us directly to experience the true Reality behind all names and forms in the universe. If we mean religion to experience Reality, it should be the goal of all goals and the final aim and object of the Universe.

Religion is an absolute necessity for all of us. As it is natural for the rivers to flow towards the ocean, or for the flames to rise upwards, so is religion natural for human beings. Plants and animals need food and nourishment to grow, eyes need light to see,

similarly all human beings need religion for their continued evolution.

Utility of religion is beyond description. It is impossible to achieve any success, prosperity, progress, knowledge, grace or any blessing whatsoever without practising the principles of religion.

Question 2 : What is the form of religion and the best method of practicising it ?

Answer : The best form of religion is to do away with egotism and to merge into the Universal Self. The best way to practise religion is (1) to ponder over the elevated and sublime teachings, again and again and to practise them in our daily life.

(2) To be in the constant company of saints and spiritually evolved persons.

(3) To make sincere efforts to remove our ignorance and negative ideas from our heart, we should live in Divinity and meditate on such Divine thoughts as, "I am the Sun, the effulgent Sun. The particles of dust get colour and brilliance from Me. The sources of celestial talk is My word. The spring of Divine Light is My sight."

Question 3 : What is that special part in human existence, with which the religion has special connection and under what circumstances does it exist ?

Answer : It is "Reality". But "Reality" is no part of human existence. I think human experience of Reality can be called a part of that Reality. The

Reality is an endless ocean, in which we are all like waves. That Reality is named "Atma", which is all-pervading and Omni present.

As regards the connection between the Atma, the Real Self and the individual Self, it is to rise above names and forms and to give up the limitations of body, mind and intellect to become All-knowledge, All Bliss and All Energy. So long as we are conscious of our limitations, we cannot be one with the Real Self. For such a man, the inner gates of the Kingdom of Heaven are closed. He cannot enjoy the bliss because he is full of ignorance, fear and weakness. We have to be above all these limitations in order to be really free and to achieve the desired goal, 'Atma' or 'Real Self'.

Question 4 ; What can help us to achieve the goal of religion ?

Answer:-(1) Take only simple diet which can be easily digested.

(2) Have sufficient sleep.

(3) Take physical exercise regularly, both in the morning and in the evening.

(4) Avoid the company of such people who may disturb your peace of mind. It is good to have the company of the spiritually advanced people, otherwise remain alone.

(5) Follow truthfulness in thoughts, words and deeds. Be fair and generous in dealings and help others.

Question 5 : Do caste, age, time, place, diet and company affect the practice of religion ?

Answer :- Yes, they do. The state of an ordinary human mind does depend on the external as well as internal conditions. As such, the state of mind can be changed with the change in environment and the success in the practice of religion depends on the state of one's mind.

With regard to heredity it may be said that though in the case of vegetables and animals, the effect of heredity is greater than that of time, place, food and company. But in the case of human beings, the influence of education, culture and society does prove to be stronger than the forces of heredity.

Question 6 : Will blind faith and merely bookish knowledge be sufficient to achieve the goal of religion or is some other practice needed to achieve the goal ?

Answer : No, blind faith is not enough. Yes, there is a practice which can certainly help you to achieve your goal. You can be completely free from sorrow, anger and ignorance. That practice is to lead

a divine life in thoughts and deeds and to consider every one like your own self and by rising above body, mind and intellect. A Persian poet says, "Wealth will be your slave and prospertity will dance to your tune like a servant".

Question 7 : Can an ordinary man attain the goal of religion, without the help of an experienced Guru or spiritual guide ?

Answer : What do you mean by an ordinary man ? Do you mean a person, whose spiritual eagerness has not developed to the intensity of Divine love ? If so, yes such a person cannot attain the desired goal, even if he gets the advantage of the most experienced spiritual, guide. But if there is an intense desire in the mind of the aspirant some experienced preceptor is bound to come to his help This is the law. An earnest and deserving seeker cannot be deprived of help.

Question 8 : Are there many natural causes that may affect progress in religious practice to achieve the desired goal.

Answer : Whosoever considers the worldly objects as real is deluded. Those persons who do not understand this simple law are doomed.

Question 9 : In what investigation the greatness of a religious faith is adopted or rejected.

Answer : The spirit of religion is Reality, the

replacement of egotism by Divinity. But unfortunately the masses take the outwad form of religion to be real religion and lay tress on secondary things as social customs, ceremonies and rituals, and not on change of heart, which is the essence of religion. Only ignorant people change their religion. On what basis they adopt or reject a particular religion I cannot answer this question.

Question : What is the real cause and purpose of the creation ?

Answer : If you examine the phenomena of nature minutely, you will find unending chain of cause and effect, time and space etc.,and at the back of every such question, "What was the cause of creation ?"there is another question, "what was the cause of which the next cause was effect" and so on. You have to regress infinitely and there is no end to it. When and where to begin is the question. Such a question is, therefore not in order. It has the fallacy of reasoning in circles.

Now take another question, "At what time this world was created ? Even before this question, there could be another question, "At what time did that time begin ? Similarly, "Where was the world created This question implies another question, "On what place was that place created ? and so on. So you see, man unnecessarily wastes his time and energy on such prolems. This is Maya.

Question 11 : How are science and religion related ?

Answer : The knowledge of science is based on experiments, observations, deduction and induction. The spiritual law of religion which is described above these, is also established by experiments, observations etc. There is however one difference. Scientific experiments limit their observations to the external objects only, while religion bases its observations on the internal state of human mind, which is obviously more subtle and more difficult.

The aim of science is to discover unity in diversity, so is the aim of religion. As a matter of fact, the very purport of religion is to show and preach oneness or unity in the whole world.

But there is one difference between science and religion. Science proves physical oneness experimentally and intellectually, while religion makes you realise the spiritual oneness practically, by actual living. The observations of science depend upon sense organs, because science deals with the names and forms. But religion utilizes the inner eye, the intuition to realize the Truth directly. Religion enlightens the ganglionic centers.

THE REGION OF BODY AND ITS RULER HUMAN MIND

by

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj
M.A.,LL D.

Mind is the ruler of the body indeed,
And body rules the mind in word and deed.
If somebody's body is weak and frail,
The mind no doubt is feeble and.....

Whatever has happened, it is only the happening of the past. The past cannot come back. But the present is under our control. No one keeps the dead body in one's house for a long time. It is better to bury it, as soon as it is possible, otherwise it will stink and spread many diseases. Similarly, one should bury the bad memories or events of one's past life, but learn from the mistakes of the past and start a new life free from those vices of the past.

Why do we start our journey on a wrong path?

It is a matter which should be thought seriously. I think the behaviour of our parents, their habits and the effect of their relationship, the effect of the environment around, the effect of the association of our friends and relations, our own attitude of mind, our thinking and tendency of greed and jealousy etc. do influence our personality and compel us to choose the wrong path. Parents do not live forever, but the environments, the events which happen in our life, the association of friends, the suggestions and impressions of others, the experiences of our own life do effect our personality as long as we live. When a person thinks seriously how far he has been influenced by the thoughts and behaviour of others and how much by his own thinking, then and only then it becomes easy and possible to improve his habits and behaviour. Although it is extremely difficult to control the environment and difficult situations, because they are not within our power directly. But our mind is our own, it can be brought under control by us. We can accomplish anything by controlling oua mind. The change in the behaviour of mind for the better can change our life and the circumstances and situations can also change gradually.

The first step to control the mind is to understand the mind thoroughly. As long as we don't